फोकस इण्डिया
प्रकाशन
अप्रैल, 2015

पारिस्थितिकीय एवं टिकाऊ खेती की विभिन्न पद्धतियां

किसानों के लिए मार्गदर्शिका

सहयोग
रोज़ा लक्जमबर्ग स्टिफटुंग,
दक्षिण एशिया

पारिस्थितिकीय एवं टिकाऊ खेती की विभिन्न पद्धतियां

किसानों के लिए मार्गदर्शिका

FOCUS ON THE GLOBAL SOUTH

पारिस्थितिकीय एवं टिकाऊ खेती की विभिन्न पद्धतियां : किसानों के लिए मार्गदर्शिका

लेखक : **पी.टी. जॉर्ज एवं अफसर जाफरी**

डाटा संकलन एवं सम्पादकीय सहयोग : **स्टेफी थॉमस एवं अंजलि जॉर्ज**

प्रकाशन : **अप्रैल, 2015**

द्वारा प्रकाशित : **फोकस ऑन द ग्लोबल साउथ**
और इस पुस्तिका की प्रतियां पाने के लिए संपर्क
33–डी, तीसरी मंजिल, विजय मंडल एनक्लेव
डी.डी.ए. एस.एफ.एस. फ्लैट्स, कालू सराय, हौज खास
नई दिल्ली–110016
टेलीफोन : 91–11–26563588 , 41049021
http://focusweb.org/

सहयोग : **रोज़ा लक्जमबर्ग स्टिफटुंग, साउथ एशिया**
सेंटर फोर इंटरनेशनल कॉ–ऑपरेशन
सी–15, दूसरी मंजिल, सफदरजंग डेवलपमेंट एरिया मार्केट,
नई दिल्ली–110016
www.rosalux-southasia.org

आवरण फोटो साभार : **सोइल डा. अर्थ**
http:/www.farmingtongardens.com/sites/default/files/images/soil%20Dr%20Earth.png

डिजाइन एवं मुद्रण : **पुलशॉप**, 9810213737

इस पुस्तिका की विषयवस्तु का इस शर्त के साथ बिना–रोक टोक के पुनर्मुद्रण और उद्धृत किया जा सकता है कि इस स्रोत का उल्लेख किया जाए। फोकस ऑन द ग्लोबल साउथ उस प्रकाशित सामग्री को पाने पर आभारी रहेगा, जिसमें इस रिपोर्ट का उल्लेख किया गया है।

इस पुस्तिका को पढ़ने के बाद आप अपने विचार हमारे साथ जरूर बांटें। आप हमें हमारे पते पर चिट्ठी भेज सकते हैं या फोन या ईमेल कर सकते हैं।

यह एक अभियान प्रकाशन है और निजी वितरण के लिए है!

विषयवस्तु

प्राक्कथन	4
भूमिका	6
भारतीय खेती की स्थिति	8
पारिस्थितिकीय खेती	11
टिकाऊ खेती बनाम औद्योगिक तरीकों की खेती	15
पारिस्थितिकीय खेती की विभिन्न पद्धतियां	20
धान सघनीकरण विधि (एस.आर.आई.)	25
प्राकृतिक खेती	28
बहु–फसलीय पद्धति से उत्पादन की प्रणालियां	33
जैविक खेती	39
बॉयो–डायनमिक खेती	51
जीरो–बजट की प्राकृतिक खेती	54
खेती में पेड़ों का महत्व	57
खेती में गायों और अन्य पशुओं का महत्व	62
जैविक खाद	67
रसायन–मुक्त और जैविक कीटनाशक	76
प्राकृतिक जीवभक्षी और ट्रैप–फसलें (पाश–फसलें)	84
पारिस्थितिकीय खेती के तौर तरीकों के बारे में अधिक जानकारी पाने के लिए संपर्क करें	88

प्राक्कथन

भारत में खेती न सिर्फ एक पेशा, बल्कि जीवन का एक तरीका भी रहा है। यह सभी अन्य सांस्कृतिक रूपों का एक आधार भी है। भारत में लगभग सभी त्योहार, खाद्य प्रणालियां और लोक कलाओं के विभिन्न रूप खेती–आधारित हैं। प्रकृति के साथ तालमेल बिठाते हुए ही यहां खेती की जाती थी। धरती हमेशा हमारी मां रही है। पहली बार हल चलाने से पहले और फसल की कटाई के बाद भूमि–पूजा की जाती है। हमारे पुरखों ने सूर्य, चंद्रमा, धरती और प्रकृति के साथ एक खूबसूरत रिश्ता महसूस किया, जिसकी बदौलत उन्होंने अच्छी तरह जीवन–निर्वाह किया।

लेकिन, 1960 के दशक में हरित क्रांति की टेक्नोलॉजी ने पूरी तस्वीर ही बदल दी। किसानों को उपज और मुनाफे के नजरिए से धरती मां को देखना सिखाया गया। उसकी हैसियत एक मां से गिरा कर महज एक उत्पादन साधन के रूप में तब्दील कर दी गई। हरित क्रांति पर अमल के 50 साल बाद भारत की सबसे उपजाऊ भूमि अनुत्पादनशील हो गई है। कॉरपोरेट–नियंत्रित उत्पादन मॉडल ने खाद्य पदार्थों को जहरीला बनाया है, मिट्टी के उपजाऊपन को नष्ट किया है, जल को दूषित किया है और वन–विनाश के रूप में नतीजा सामने आया है। प्राकृतिक संसाधनों का व्यवसायीकरण और उसके एवज में लाभ के बगैर उत्पादन की बढ़ती लागत ने न सिर्फ लाखों किसानों को खेती से बाहर धकेला, बल्कि उन्हें आत्महत्या के लिए भी मजबूर किया है।

खेती में संकट की वजह से कई अंतर्राष्ट्रीय संस्थाओं, विश्वविद्यालयों, सरकारों एवं अनुसंधान केंद्रों, कुछ स्वयंसेवी संस्थाओं और अन्य संगठनों ने अंततः ''पारिस्थितिकीय खेती'' (एग्रोइकोलॉजी) को एक भावी रास्ते के रूप में स्वीकार किया है।

पारिस्थितिकीय खेती कोई नई चीज नहीं है। इसे सदियों से न सिर्फ एक उत्पादन प्रणाली, बल्कि जीवन के एक तरीके के रूप में भी अपनाया जाता रहा है। पारिस्थितिकीय खेती की समझ आसपास की पारिस्थितिकी को समझने, उसे सुनने, उससे सीख लेने और उसके साथ गहरा नाता जोड़ने के साथ शुरू होती है। यह मानते हुए कि मनुष्य, प्रकृति और सृष्टि का एक अंग हैं, इसलिए प्रकति, सृष्टि और मनुष्यों के बीच एक संतुलन की रक्षा करना बहुत जरूरी है। धरती मां के साथ सद्भावनापूर्ण रिश्ता रखना एवं पारम्परिक ज्ञान प्रणालियों का आदर करना, जो समय की कसौटी पर खरे उतरे हैं, यही पारिस्थितिकीय खेती का मूल मंत्र है। इसलिए, यह सुनिश्चित उत्पादन की महज एक सूची नहीं, बल्कि प्रकृति के आदर और उससे सीख लेने की एक प्रणाली भी है।

पारिस्थितिकीय खेती दार्शनिक सिद्धांत के साथ–साथ एक राजनीतिक अभिव्यक्ति भी है। पारिस्थितिकीय खेती में उन सभी चीजों के पुनर्निर्माण की शक्ति है, जिसको तथाकथित हरित क्रांति और औद्योगिक तरीकों के खाद्य उत्पादन मॉडल ने नष्ट कर दिया है। पारिस्थितिकीय खेती में बाहरी लागत की उन कृषि–चीजों का इस्तेमाल कम किया जाता है, जिनको कंपनियों से खरीदा जाता है। पारिस्थितिकीय खेती में विषैले कृषि

पदार्थों, कृत्रिम हारमोन्स, आनुवंशिक रूप से संशोधित जीवों (जी.एम.ओ) या अन्य नई टेक्नोलॉजी का इस्तेमाल नहीं किया जाता। पारिस्थितिकीय खेती उस आर्थिक प्रणाली के विरोध का एक प्रमुख रूप है, जिसमें मुनाफे को प्रकृति और जीवन से ऊपर रखा जाता है।

पारिस्थितिकीय खेती किसान समुदाय द्वारा ''स्वराज'' या स्वशासन पाने का एकमात्र तरीका है। जब हम बाहरी लागत की कोई भी चीज नहीं खरीदते हैं और मुफ्त में प्रकृति में उपलब्ध चीजों से आवश्यक जैव–उर्वरक या जैव–कीटनाशकों को बनाते हैं तो बाजारमुखी अर्थव्यवस्था या उत्पादकों के उपभोक्तावाद का विचार धराशायी हो जाएगा। यह सहयोग की संस्कृति की पुनर्स्थापना, गांवों में प्रतिस्पर्धा की संस्कृति को मिटाने और उन्हें प्रेम, अनुराग एवं शांति का स्थान बनाने का भी एक तरीका है।

पारिस्थितिकीय खेती में उन युवाओं को आमंत्रित करने की ताकत है, जिन्होंने खेती में आशा खो दी है और अपने गांवों को छोड़ दिया है। यह एक ऐसा प्रगतिशील वातावरण पैदा कर सकती है, जहां ग्रामीण युवा भविष्य को लेकर खोई आशा को पुनः जगा सकते हैं और अपने गांवों की गरिमा पुनः कायम कर सकते हैं।

संयुक्त राष्ट्र द्वारा 2015 को मिट्टी वर्ष के रूप में मनाया जा रहा है। लेकिन, यह एक ऐसा वर्ष भी है, जहां भारत में आत्महत्या करने वाले किसानों की संख्या भी बहुत बढ़ी है। अब हमें हमारे द्वारा अपनाए जाने वाले रास्ते को स्पष्ट करना होगा। पारिस्थितिकीय खेती न सिर्फ किसानों, बल्कि उपभोक्ताओं और पर्यावरण के सुनहरे भविष्य का एकमात्र रास्ता है। मैं इस मार्गदर्शिका (लघु–पुस्तिका) एवं पारिस्थितिकीय खेती पर पुस्तिकाओं की श्रृंखला प्रकाशित करने में फोकस ऑन ग्लोबल साउथ की कड़ी मेहनत के लिए उसको बधाई देती हूं। मुझे आशा ही नहीं, बल्कि पूरा विश्वास है कि यह पुस्तिका अनेक व्यक्तियों (और विशेषकर किसानों) तक पहुंचेगी और लोगों को उनकी नींद से जगाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाएगी।

– चुक्की नान्जुनदास्वामी
वर्किंग प्रेसीडेन्ट, के.आर.आर.एस. (कर्नाटक राज्य रायता संघ) और ग्रीन ब्रिगेड
मैनेजिंग ट्रस्टी, अमृता भूमि–*ला विआ कैम्पेसिना* स्कूल ऑफ एग्रोकोलॉजी–साउथ एशिया
चैमाराजनगर जिला, कर्नाटक

भूमिका

पारिस्थितिकीय एवं टिकाऊ खेती की विभिन्न पद्धतियों (हैंडबुक ऑन एग्रोइकोलॉजी : फार्मर्स मैन्युल ऑन सस्टेनेबल प्रैक्टिसेज) पर प्रकाशित यह मार्गदर्शिका छोटे एवं सीमांत किसानों के लिए पारिस्थितिकीय खेती पर श्रृंखला में तीसरी पुस्तिका है। इन्हें फोकस ऑन द ग्लोबल साउथ ने रोज़ा लक्जमबर्ग स्टिफटुंग (आर. एल.एस.), साउथ एशिया, के सहयोग से प्रकाशित किया है।

इस लघु–पुस्तिका का विचार तब आया, जब फोकस ऑन ग्लोबल साउथ और रोज़ा लक्जमबर्ग स्टिफटुंग, साउथ एशिया ने 22–23 अक्टूबर, 2013 को नई दिल्ली में ''छोटे किसानों की खेती : शक्ति, क्षमता और संभावनाएं'' पर एक कार्यशाला आयोजित की, जहां किसानों ने पारिस्थितिकीय खेती के तौर तरीकों पर एक मार्गदर्शक पुस्तिका के प्रकाशन की मांग की थी। इस पुस्तिका में हमने प्रकृति के साथ सामंजस्य बिठाते हुए खेती (पर्मेकल्चर), जैविक खेती, प्राकृतिक खेती, जैव–ऊर्जा खेती, शून्य बजट की प्राकृतिक खेती (जीरो बजट नैचुरल फार्मिंग) और कृषि–वानिकी आदि से संबंधित पारिस्थितिकीय खेती की विभिन्न पद्धतियों को पेश करने का प्रयास किया है।

पारिस्थितिकीय खेती के उपरोक्त सभी विविध तौर तरीके भारत में प्रचलित हैं और कई संगठन इनमें से किसी एक या दूसरे रूपों में पारिस्थितिकीय खेती के कम लागत वाले इन तौर तरीकों को बढ़ावा देने का काम कर रहे हैं। इसके बावजूद, प्रेरणा की कमी, संसाधनों की कम उपलब्धता, फसल गंवाने के डर, शुरूआत में अधिक लागत और समुचित सरकारी सहायता की कमी के चलते भारत में अनेक छोटे किसान खेती के इन टिकाऊ तौर तरीकों को अपनाने के प्रति अनिच्छुक हैं। इसलिए, टिकाऊ एवं सुरक्षित खाद्य उत्पादन के तरीकों की ओर मुड़ने के बदलाव के महत्व के बारे में किसानों को शिक्षित करने और जानकारी देने के लिए तत्काल कुछ कदम उठाने बेहद जरूरी हैं।

इस पुस्तिका का उद्देश्य टिकाऊ एवं सुरक्षित खाद्य उत्पादन और उसकी तकनीकों की विविध संभावनाओं के बारे में छोटे किसानों को शिक्षित करना और जानकारी देना है। यह पुस्तिका पारिस्थितिकीय खेती की विभिन्न पद्धतियों, उनके विशिष्ट सिद्धांतों, तकनीकों और रणनीतियों को समझने के लिए एक व्यावहारिक गाइड के रूप में तैयार की गई है। हमें आशा है कि ये तकनीकें उन छोटे एवं सीमांत किसानों की जरूरतों को पूरी करने में मददगार होगी, जो कम बजट की खेती की ओर मुड़ना चाहते हैं। हम यह भी आशा करते है कि छोटे किसान बाहरी कृषि–वस्तुओं (इनपुट्स) की अधिक लागत के बिना इस मार्गदर्शिका में बतलाए गए टिकाऊ खेती के तौर तरीकों को आसानी से अपना सकते हैं। हालांकि, इसमें दिए गए तौर तरीके कम लागत वाली जैविक खेती को अपनाने के लिए उपलब्ध एकमात्र मान्य रोडमैप नहीं है। पारिस्थितिकीय खेती करने वाला हुनरमंद किसान अपनी विशेष फसलों, मिट्टी की स्थितियों और उपलब्ध प्राकृतिक संसाधनों के मुताबिक अपनी स्वयं की नई तकनीकों के जरिए पारिस्थितिकीय खेती के भिन्न सिद्धांत अपना सकता है।

मिट्टी का कटाव, पानी की कमी और प्रदूषित पर्यावरण कुछ ऐसे महत्वपूर्ण मसले हैं, जिनका छोटे किसान

रोज़ाना सामना करते हैं। इस मार्गदर्शिका का उद्देश्य छोटे किसानों द्वारा अपने आसपास के पर्यावरण में उपलब्ध सीमित संसाधनों का पूरा उपयोग करते हुए पारिरस्थितिकीय खेती के तौर तरीके अपना कर भूमि के कटाव को घटाने, जल संरक्षण और पर्यावरण की रक्षा की जरूरत के बारे में उन्हें समझाना है।

इस मार्गदर्शिका में बतलाए गए पारिस्थितिकीय खेती के विविध तौर तरीकों को आगे किए जाने वाले कार्य के रूप में आसान कदमों के बारे में समझाया गया है। यह पुस्तिका फसलों के उत्पादन, जल प्रबंधन, मिट्टी की रक्षा, फसल की रक्षा और जैविक कीट नियंत्रण आदि के विभिन्न प्रकारों के बारे में कई विकल्प एवं दृष्टिकोण पेश करती है। किसान स्थानीय जलवायु की स्थितियो और मिट्टी के प्रकारों के मुताबिक अपनी फसलों एवं सब्जियों का चयन कर सकते हैं।

यह मार्गदर्शिका पारिस्थितिकीय खेती की पद्धतियों पर एक विस्तृत पुस्तक नहीं है, लेकिन इसमें पारिस्थितिकीय खेती की पद्धतियों के बारे में पहले से ही उपलब्ध व्यापक संसाधनों का उपयोग किया गया है और जानकारियां फैलाने में उनकी भूमिका स्वीकार की गई है। आशा है कि यह पुस्तक पारिस्थितिकीय खेती के तौर तरीकों को बेहतर ढंग से समझने में छोटे किसानों के लिए मददगार होगी।

हम यह आशा भी करते हैं कि हम जिन किसानों तक पहुंचेंगे, वे इस मार्गदर्शिका में समझाए गए तरीकों पर अमल कर पारिस्थितिकीय एवं टिकाऊ खेती को अपना सकते हैं और वर्तमान में की जा रही रसायन, उर्वरक और कीटनाशक–आधारित खेती का एक ठोस विकल्प पेश कर सकते हैं।

यह भारत में पारिस्थितिकीय खेती आंदोलन को मजबूत बनाने का हमारा एक छोटा–सा प्रयास है।

– अफसर जाफरी
कॉ–ऑर्डिनेटर, फोकस ऑन द ग्लोबल साउथ,
नई दिल्ली

भारतीय खेती की स्थिति

''क्या मानव समाज अपने मामलों का अच्छी तरह संचालन कर सकता है ताकि उसकी मुख्य संपदा यानी मिट्टी के उपजाऊपन का संरक्षण हो सके। इस सवाल के जवाब में इस सभ्यता का भविष्य निहित है।''

– सर अल्बर्ट होवार्ड, जैविक पद्धति के प्रणेता

खेती की पारम्परिक ज्ञान–प्रणाली

चित्र–1 : एक किसान एक बैल जोड़ी से खेत की जुताई करते हुए।
स्रोत : http://commons.wikimedia.org/wiki/file:ploughing_with_cattle_in_west_bengal.jpg

भारत की खेती का इतिहास हजारों साल पुराना है। विभिन्न तरह की भूमि और जलवायु वाले इस विशाल देश में किसान समुदायों ने उन प्राकृतिक संसाधनों की सहायता से पीढ़ी–दर–पीढ़ी अपना अस्तित्व कायम रखा है, जो धरती माता ने दिए हैं। जीवन–निर्वाही खेती, जिसका उद्देश्य आजीविकाओं को टिकाऊ बनाना और मिट्टी एवं पर्यावरण की रक्षा करना है, देश भर में की जाने वाली पारम्परिक खेती का मूल रूप है। जीवन–निवाही खेती के कुछ महत्वपूर्ण तरीकों में वर्षाधीन भूमि पर खेती, गीली भूमि पर खेती और झूम खेती (इसे ''काटना एवं जलाना'' भी कहा गया है) शामिल हैं। इस ऐतिहासिक प्रक्रिया में किसान समुदायों ने अपने सामूहिक अनुभवों के जरिए ज्ञान–प्रणालियां भी विकसित कीं। सदियों तक इन ज्ञान–प्रणालियों को संचित एवं परिष्कृत किया गया और मुख्य रूप से मौखिक परम्पराओं के जरिए एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी को सौंपा गया। इस प्रकार, भारतीय किसानों ने भूमि, पानी, बहती जलधाराओं, वनों, नदियों और पहाड़ों के साथ गहरा नाता जोड़ कर उसे चिरस्थायी बनाया है, जो उनकी संस्कृति एवं धरोहर की आधारशिला है। ये देसी या पारम्परिक ज्ञान–प्रणालियां देश भर में टिकाऊ जीवनयापन और प्राकृतिक संसाधनों की रक्षा एवं रखरखाव की एक महत्वपूर्ण ताकत हैं।

पारम्परिक ज्ञान–प्रणालियों के सामने चुनौतियां

बीसवीं शताब्दी के मध्य से समस्या के समाधान की खातिर वैज्ञानिक दृष्टिकोण अपनाने से इन पारम्परिक ज्ञान–प्रणालियों को किनारे पर धकेल दिया गया। भारत के खेती और किसानी के क्षेत्र में भी विशेषकर हरित क्रांति के आगमन के साथ कृत्रिम, रासायनिक एवं उर्वरक–आधारित खेती प्रणालियों के पक्ष में खेती की पारम्परिक तकनीकों को किनारे पर धकेला गया है।

हरित क्रांति के प्रभाव

''हरित क्रांति'' का जिक्र खेती के तौर तरीकों के क्षेत्र में नया रूप देने के व्यापक आंदोलन के लिए किया जाता है, जो 1940 के दशक में मैक्सिको में शुरू हुआ था। ''हरित क्रांति के जनक'' माने जाने वाले अमेरिकी

वैज्ञानिक नोरमन बोरलॉग के अनुसंधान से गेहूं की उच्च उपज देने वाली किस्में तैयार करने का मार्ग प्रशस्त हुआ था, जिससे भरपूर फसल की पैदावार हुई और मैक्सिको में ''सरप्लस'' (अधिशेष) खाद्यान्न की स्थिति बन गई। 1950 और 1960 के दशक में अमेरिका और शेष विश्व ने हरित क्रांति की प्रौद्योगिकियों को अपनाया।

खाद्य उत्पादन में आत्मनिर्भरता पाने के उद्देश्य से भारत भर में हरित क्रांति को अपनाया गया ताकि दुनिया की दूसरी सबसे बड़ी आबादी वाले इस देश में खाद्यान्नों की बढ़ती मांग की पूर्ति की जा सके। प्रारम्भिक सालों में हरित क्रांति सफल नज़र आने लगी क्योंकि साल–दर–साल भरपूर खाद्यान्न पैदावार हुई और सरप्लस खाद्यान्न की स्थिति बन गई। लेकिन, उच्च उपज वाली फसलों की प्रारम्भिक सफलता के बाद पर्यावरण, स्वास्थ्य और पारम्परिक खेती के तौर तरीकों पर भारी दुष्प्रभाव पड़ने की हकीकतें उभर कर सामने आने लगीं।

रासायनिक उर्वरकों, संकर बीजों एवं कीटनाशकों के अंधाधुंध इस्तेमाल का नतीजा सामाजिक–आर्थिक समस्याओं के साथ पर्यावरण एवं स्वास्थ्य संबंधी अनेक खतरे पैदा होने के रूप में सामने आया। किसान एवं उपभोक्ता पर्यावरण संबंधी खतरों पर काबू पाने और खेती में महंगी चीजों के साथ तालमेल बिठाने में असमर्थ थे।

चित्र–2 : हरित क्रांति ने भारत में अत्यधिक मशीनीकृत खेती की शुरूआत की।
स्रोत : The Green Revolution, O Ecotextiles, online at: https://oecotextiles.wordpress.com/category/green-revolution/. Photo retrieved from: https://oecotextiles.files.wordpress.com/2011/06/triop8190013_jpg.jpg

रसायनों के अत्यधिक इस्तेमाल से कीटों एवं कीड़े–मकोड़ों (पेस्ट्स एंड इनसेक्ट्स) के प्रति फसल की प्रतिरोधक शक्ति कम पड़ गई है। इसके विपरीत, समय बीतने के साथ कीटों ने रासायनिक दवाओं के प्रति अधिक प्रतिरोधक शक्ति विकसित कर ली, जिससे किसान अधिक महंगे कीटनाशकों और खरपतवारनाशकों को खरीदने को मजबूर हुए। इन चीजों की ऊंची कीमतों से खेती गैर–फायदेमंद होने लगी। उत्पादन की लागत बहुत बढ़ गई, जबकि साल–दर–साल उपज में कमी आना शुरू हो गया। हरित क्रांति एक विरोधाभास साबित हुई क्योंकि अनेक छोटे एवं सीमांत किसानों ने खेती छोड़ कर खेती–मजदूर या दिहाड़ी मजदूर बनना पसंद किया। किसानों का बड़ी तादाद में गांवों से शहरों की तरफ पलायन हुआ क्योंकि सरकार ने जीवन निर्वाही खेती करने वाले किसानों की दुर्दशा पर अपनी आंखें मूंद ली थीं।

क्या कोई समाधान है?

सर अल्बर्ट होवार्ड ने पश्चिमी देशों में औद्योगिक तरीकों की खेती की समस्याओं के बारे में अपनी पुस्तक एग्रीकल्चर टेस्टामेंट (1943 में प्रकाशित) में टिप्पणी की है : ''खेती के बारे में ढेरों विचार नाकाम हो रहे हैं, धरती मां ने अपने भूमि–अधिकार (मैनोरिलय राइट्स) से वंचित हो जाने के विरोध में बगावत कर दिया हैं, भूमि हड़ताल कर रही है, भूमि का उपजाऊपन घट रहा है ... भूमि अब खिंचाव नहीं झेल पा रही है। भूमि की

उर्वरता तेजी से कम हो रही है ... भूमि के कटाव की बढ़ती समस्या दुनिया भर में उर्वरता का नुकसान इंगित कर रही है ... बीमारियां बढ़ रही हैं ... फसलों की बीमारियों से पशुओं में बीमारियां भी बढ़ रही हैं'' ।[1]

पश्चिमी औद्योगिक तौर तरीकों की खेती की खामियों के बारे में होवार्ड की टिप्पणियां भारत में हरित क्रांति के बाद सही साबित हो रही हैं, जिन्हें हम अब महसूस करते हैं। हरित क्रांति के बाद की त्रासदियां अब एक स्थायी कृषि संकट बन गई हैं। इसका भारत में एक असर बड़ी संख्या में ग्रामीण किसानों द्वारा आत्महत्या के रूप में सामने आया है। 1997 से अब तक लगभग 3,00,000 किसान आत्महत्या कर चुके हैं।

इस स्थिति में हमें वह करना चाहिए, जो सर अल्बर्ट होवार्ड ने किया। ब्रिटिश साम्राज्य ने 1905 में वनस्पति विज्ञानी के रूप में उन्हें भारतीय खेती को रासायनिक तरीकों की खेती के साथ जोड़ कर एक औद्योगिक प्रणाली के रूप में तब्दील करने के लिए भारत में भेजा था। लेकिन, जब उन्होंने सभी प्रकार के कीटों से मुक्त समृद्ध एवं जैव–विविध भारतीय खेती प्रणाली को देखा तो वह भारतीय किसानों के प्रशंसक बन गए और किसानों के तौर तरीकों के अवलोकन और उनके पारम्परिक ज्ञान को आत्मसात करने का फैसला किया। उन्होंने भारतीय किसानों को अपने गुरुओं के रूप में देखा। आज सर होवार्ड को आधुनिक जैविक खेती के संस्थापक और पारम्परिक भारतीय कम्पोस्टिंग प्रणाली का परिष्कार कर उस कम्पोस्टिंग के लिए याद किया जाता है, जिसे 'इंदौर पद्धति' के नाम से जाना जाता है।[2] सर अल्बर्ट होवार्ड का मत था कि किसी भी स्वास्थ्यवर्धक खेती में शत्रु–कीट नहीं होने चाहिए। इसमें कीड़े (इनसेक्ट्स) हों, पर संतुलन की वजह से कोई भी कीड़ा–मकोड़ा उस तरह कीट नहीं बनता, जिस तरह कोई जीव एक बीमारी नहीं बनता है। आज औद्योगिक तरीकों की खेती जहर उत्पादन पर आधारित है और यह कीट नियंत्रण का पारिस्थितिकीय विज्ञान नहीं है। हमें अपनी भूमि को उपजाऊ बनाने के लिए उसे जहर–मुक्त करना और पोषक तत्वों की दृष्टि समृद्ध बनाना होगा।

उपजाऊ भूमि मानव जीवन का मुख्य स्रोत है। ऊपजाऊ भूमि के बिना हम खाद्य पदार्थ की उपज नहीं कर पाएंगे या जीवित नहीं रह सकेंगे। जब हम उपजाऊ भूमि को बर्बाद करते हैं तो हम अपने भविष्य को भी बर्बाद करते हैं। सवाल यह है कि हम किस प्रकार भूमि की बर्बादी रोक सकते हैं और साथ ही खाद्य पदार्थों की उपज जारी रखना सुनिश्चित कर सकते हैं?

इसका जवाब है– टिकाऊ खेती, जो खेती, पर्यावरण और भूमि के उपजाऊपन के बीच संतुलन को बढ़ावा देती है। यह एक सम्पूर्ण तरीका है, जो रसायनों और जीवाश्म ईंधन–आधारित ऊर्जा की चीजों (फोसिल फ्यूल बेस्ड एनर्जी इनपुट्स) पर निर्भर नहीं है। टिकाऊ खेती किसानों को संसाधनों के संरक्षण, फसल प्रबंधन को अनुकूल बनाने (एडेप्ट) और उच्च स्तर की उत्पादकता में मददगार होती है, जो कम खर्चीली, पर्यावरण की दृष्टि से सुरक्षित और सामाजिक रूप से औचित्यपूर्ण है।

---

[1]Howard, Albert. "An Agricultural Testament", Oxford University Press, Inc., New York & London, 1943. Retrieved from http://www.zetatalk3.com/docs/Agriculture/An_Agricultural_Testament_1943.pdf

[2]Howard, Albert. "The Waste Products of Agriculture", 1931.Online at: http://gutenberg.net.au/ebooks02/0200321.txt

पारिस्थितिकीय खेती

वर्ष 2013 में संयुक्त राष्ट्र के खाद्य एवं कृषि संगठन (एफ.ए.ओ.) ने अपनी एक रिपोर्ट में दर्शाया कि विश्व के 842 मिलियन (84.2 करोड़) लोग (दुनिया की कुल आबादी के लगभग 14 प्रतिशत) लंबे समय से कुपोषित हैं।[3] इस रिपोर्ट में दुनिया की पूरी आबादी की खाद्य जरूरतों की पूर्ति में हमारी सरकारों और कॉरपोरेट जगत द्वारा नियंत्रित उद्योगीकृत वैश्विक कृषि व्यवसाय की अक्षमता को सूक्ष्म रूप से इंगित किया गया है। रिपोर्ट में हमें अप्रत्यक्ष रूप से चेतावनी दी गई है कि दुनिया भर में अपनाई जा रही खेती की प्रणाली से जनता के स्वास्थ्य और भूमंडल पर प्रतिकूल असर पड़ रहे हैं। इसलिए, किसानों, उपभोक्ताओं और हमारी संवेदनशील धरती मां की रक्षा के लिए एक वैकल्पिक मेकेनिज्म (तंत्र) को विकसित किया जाना चाहिए।

हाल ही में संयुक्त राष्ट्र ने 2014 को अंतर्राष्ट्रीय पारिवारिक खेती वर्ष के रूप में घोषित किया था। संयुक्त राष्ट्र विश्व के छोटे, सीमांत और जीवन–निर्वाही किसानों के समूहों को अपनी खेती–किसानी का सम्मान करने का आह्वान करता है।

यह किस प्रकार संभव है?

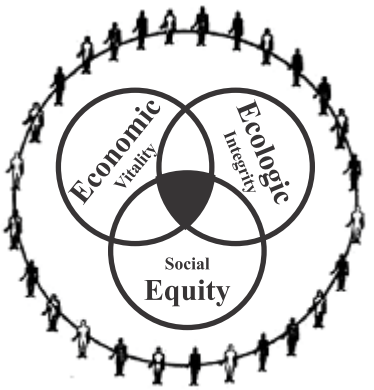

चित्र–3 : टिकाऊ खेती के लिए पारिस्थितिकीय खेती विज्ञान।
स्रोत :http://johngerber.world.edu/2011/09/21/agroecology-science-sustainable-agriculture/. Photo courtesy:http://world.edu/wp-content/uploads/2011/09/threeEs.jpg

किसान पहले से ही खेती में अत्यधिक महंगी लागत एवं उपज में लगातार कमी का बोझ झेल रहे है और जलवायु परिवर्तन के नकारात्मक प्रभाव का सामना कर रहे हैं। संयुक्त राष्ट्र के प्रस्ताव को तभी अंजाम तक पहुंचाया जा सकता है, जब छोटे एवं जीवन–निर्वाही किसान अपनी मर्जी से रासायनिक उर्वरकों एवं कीटनाशक–आधारित खेती को छोड़ दें और पारिस्थितिकीय एवं टिकाऊ खेती को अपना लें। भारत में यह अत्यधिक संभव है, अगर हम अपने प्रचुर स्थानीय ज्ञान और टिकाऊ खेती के नवोन्मेषी तरीकों का सही ढंग से उपयोग करें, जिन्हें आज भी देश के अनेक भागों में अपनाया जाता है। इन प्रणालियों का उपयोग करते हुए, भारत में कई छोटे एवं सीमांत किसान अपनी उपज बढ़ा सकते हैं और बढ़ा रहे हैं और साथ–साथ अधिक पोषकता–सघन और विविध खाद्य प्रणाली में सुधार कर रहे हैं एवं भूमि की गुणवत्ता एवं उसके पोषक तत्वों को बरकरार रखे हुए हैं। जैव–विविध एवं टिकाऊ खेती, जिसे आम तौर पर पारिस्थितिकीय खेती (या पारिस्थितिकीय कृषि) भी कहते हैं, गांव से शहर की ओर पलायन को रोक सकती

[3]"The State of Food Insecurity in the World 2013.The multiple dimensions of food security"Agriculture Organization of The United Nations, Rome, FAO, IFAD and WFP, 2013. Retrieved from: http://www.fao.org/docrep/018/i3434e/i3434e.pdf

है, गांव में अधिक रोजगार पैदा कर सकती है, ग्रामीण अर्थव्यवस्था में सुधार ला सकती है और स्थानीय छोटे बाजारों तथा खेती के क्षेत्र में नई जान भी डाल सकती है।

पारिस्थितिकीय खेती क्या होती है?

पारिस्थितिकीय खेती जीवंत जीवों और खेती एवं भूमि के इस्तेमाल के संदर्भ में उनके अंतर–संबंधों का अध्ययन है। यह टिकाऊ खेती का वैज्ञानिक आधार है और टिकाऊ पारिस्थितिकीय खेती की प्रणालियों की डिजाइन तैयार करने एवं उसके प्रबंधन में पारिस्थितिक अवधारणों तथा सिद्धांतों का ही इस्तेमाल किया जाता है।[4]

पारिस्थितिकीय खेती भारत के लिए क्यों महत्वपूर्ण है?

भारत का खेती सेक्टर घटती पैदावार से लेकर बाहरी लागत की महंगी वस्तुओं, छोटे किसानों को कम सब्सिडी, सरकारी खरीद के लिए समुचित एवं कुशल प्रक्रिया का अभाव और फसल की कटाई के समय कृषि उत्पादों के घटते दाम जैसे मसलों से जकड़ा हुआ है। इसका दुष्परिणाम किसानों द्वारा आत्महत्या एवं अन्य संकटों के रूप में सामने आया है।

भोजन के अधिकार पर संयुक्त राष्ट्र के पूर्व स्पेशल रैपोर्टियर ओलीवर दे शुटर के अनुसार खेती को खाद्य एवं उर्जा संकट, भुखमरी, गरीबी, एवं जलवायु परिवर्तन पर ध्यान देने के लिए पर्यावरण की दृष्टि से सुरक्षित, सामाजिक रूप से औचित्यपूर्ण उत्पादन पद्धतियों की ओर पुनः मोड़ा जाना चाहिए।[5] उनका कहना है कि पारिस्थितिकीय खेती दुनिया भर में करोड़ों गरीब किसानों की आमदनी और आजीविकाओं में सुधार ला सकती है एवं सभी को खाद्य सुरक्षा प्रदान कर सकती है।

वैश्विक औद्योगिक तरीकों की खेती एवं खाद्य उत्पादन प्रणाली से पैदा हुई सामाजिक एवं पर्यावरण संबंधी समस्याओं के जवाब में पारिस्थितिकीय खेती भूमि प्रबंधन के तौर तरीकों और गतिशील सामाजिक आंदोलन की आधारशिला बन गई है। दुनिया भर में जलवायु परिवर्तन से संबंधित आपदाओं के बार–बार आने के मद्देनजर, विशेषकर छोटे किसानों के लिए , शीघ्र ही पारिस्थितिकीय खेती की ओर मुड़ना बहुत महत्वपूर्ण है, भारत में, जहां करोड़ों छोटे किसान खेती करते हैं, यह अति–आवश्यक है।

पारिस्थितिकीय खेती की विशेषताएं

टिकाऊ पारिस्थितिकीय खेती के मॉडल के रूप में, पारिस्थितिकीय खेती की तीन विशेषताएं हैं :[6]

1. यह एक वैज्ञानिक विषय है, जिसमें मानवीय और पर्यावरण संबंधी तत्वों सहित पारिस्थितिकी खेती तंत्र का संपूर्ण अध्ययन शामिल है।
2. यह सिद्धांतों एवं तौर तरीकों की एक व्यवस्था है, जिसका खेती की प्रणाली में गतिशीलता तथा

---

[4]Altieri, Miguel A. "Agroecology: principles and strategies for designing sustainable farming systems, University of California, Berkeley". Retrieved from: http://nature.berkeley.edu/~miguel-alt/principles_and_strategies.html

[5]Schutter, Olivier De. "Eco-farming addresses hunger, poverty and climate change", LEISA India, Volume 16,No. 2, June 2014. Retrieved from Agricultures, online at: http://www.agriculturesnetwork.org/magazines/india/breaking-poverty/eco-farming

[6]"Principles of Agroecology and Sustainability", in Agroecology, retrieved from: http://www.agroecology.org/Principles_List.html

पारिस्थितिकीय, सामाजिक–आर्थिक एवं सांस्कृतिक टिकाऊपन बढ़ाने में उपयोग किया जाता है।

3. यह खेती और उसके समाज के साथ रिश्ते पर विचार करने का एक नया तरीका है।

पारिस्थितिकीय खेती, कृषि क्षेत्र की अनेक प्रमुख समस्याओं, विशेषकर प्रत्येक व्यक्ति को सुरक्षित एवं पोषक खाद्य पदार्थ देने की चुनौती को कम कर सकती है। यह देश को खाद्य सुरक्षा और पर्यावरण की सुरक्षा का उद्देश्य पाने में मदद भी कर सकती है।

पारिस्थितिकीय खेती पांच सिद्धांतों पर आधारित है :[7]

1. इस खेती में, जैव खेत के कचरे (जैव भार) की रिसाइक्लिंग को बढ़ावा मिलता है और यह खेत के पोषक तत्वों को इष्टतम बनाती एवं संतुलित करती है। किसी भी खेत पर साल–दर–साल एक बड़ी मात्रा में जैव कचरा (गाय का गोबर, गेहूं एवं धान की भूसी आदि) पैदा होता है। किसान मिट्टी के पोषक स्तर में वृद्धि के लिए इस जैव कचरे को खेत में दोबारा इस्तेमाल (रिसाइक्लिंग) करते हैं। पारिस्थितिकीय खेती के तौर तरीके किसान को उसके खेत पर या अन्य स्रोतों (अधिकतम मामलों में खेत में) से उपलब्ध जैव कचरे के अधिकतम उपयोग में सक्षम बनाते हैं ताकि उत्पादकता में वृद्धि हो।

2. यह जैविक पदार्थ के प्रबंधन द्वारा जैविक गतिविधि में वृद्धि करती है। जैविक पदार्थ पौधे के बेहतर विकास के लिए मिट्टी की अनुकूल स्थिति में मददगार होते हैं। जैविक पदार्थ (पौधा एवं जानवर दोनों के अपशिष्ट) के गलाने से मिट्टी के गुणों पर सकारात्मक प्रभाव पड़ता है और मिट्टी की गुणवत्ता में सुधार आता है।

3. यह सूक्ष्म–जलवायु, मिट्टी एवं जल प्रबंधन के जरिए नुकसानों को कम करती है। सूक्ष्म जलवायु परिस्थिति काफी चीजों पर निर्भर करती है, जिसमें तापमान, आर्द्रता, हवा, वायुमंडलीय विक्षोभ, ओस, पाला, गर्मी, संतुलन और वाष्पीकरण शामिल हैं। भूमि की किस्म का सूक्ष्म जलवायु पर भारी प्रभाव पड़ता है। पारिस्थितिकीय खेती के तौर तरीके सूर्य की अत्यधिक रोशनी, गर्मी, हवा एवं जल के कारण नुकसानों में कमी लाने में मददगार हैं। यह अधिक भू–आवरण के जरिए जलवायु के सूक्ष्म प्रबंधन, जल संचयन और मिट्टी के प्रबंधन द्वारा किया जाता है।

   जलवायु के सूक्ष्य प्रबंधन का एक अन्य लाभ यह है कि यह भूमि को नमी सोखने और उसे बनाए रखने में मदद करता है, जो भूमि के रूप एवं उसके इस्तेमाल पर निर्भर करेगा। वनस्पति की खेती भी मिट्टी एवं जल प्रबंधन का एक अभिन्न अंग है क्योंकि यह वाष्प उत्सर्जन के जरिए हवा में जल के वाष्पीकरण को नियंत्रित करता है।

4. यह प्रजातियों एवं आनुवंशिक विविधीकरण का संवर्धन करती है। पौधों को चयनात्मक ढंग से उगाने से लंबे समय तक आनुवंशिक रूप से एक समान पौधों की खेती की जाती है, जिससे फसलें व्यापक रूप से रोगों से निपटने में अत्यंत संवेदी बन जाती हैं। इसके विपरीत, प्रजातियां और आनुवंशिक विविधता पौधों को बदलते पर्यावरण के अनुकूल ढालने में मदद करती है।

---

[7]Varghese, Shiney & Karen Hansen-Kuhn, "Scaling Up Agroecology: Toward the Realization of the Right to Food", Institute for Agriculture and Trade Policy(IATP), Minnesota, USA. Retrieved from: http://www.iatp.org

5. यह जीवों में लाभदायक पारस्परिक जैविक–क्रिया में वृद्धि करती है। किसी भी जीव की पर्यावरण के साथ पारस्परिक अंतर–क्रिया उसके अस्तित्व और पूरे पारिस्थितिकी तंत्र की कार्यप्रणाली के लिए बहुत जरूरी है। जैविक अंतर–क्रियाएं किसी भी समुदाय में एक–दूसरे के लिए आवश्यकता के रूप में जीवीय प्रभाव हैं। प्रकृति जगत में कोई भी जीव अलग–थलग नहीं रहता और इस प्रकार, प्रत्येक जीव पर्यावरण और अन्य जीवों से जुड़ा होता है।

आधुनिक तरीकों की खेती के विपरीत पारिस्थितिकीय खेती का उद्देश्य पारिस्थितिकी तंत्र की प्रक्रियाओं को बनाए रखना है ताकि वे फसलें उगाने के आवश्यक मुख्य कार्य करें, न कि रासायनिक उर्वरकों या कीटनाशकों जैसी बाहरी लागत की चीजों के जरिए उन्हें मजबूर किया जाए। पारिस्थितिकीय खेती भू–प्रक्रियाओं, पोषक तत्वों का स्रोत बनने और जल एवं मिट्टी के संरक्षण के जरिए अनेक जैव–भौगोलिक गुणों और चीजों के प्रबंधन द्वारा अपना काम करती है। पारिस्थितिकीय खेती इन पुनर्निवेश की एक रूपरेखा प्रदान कर सकती है। पारिस्थितिकीय खेती के तौर तरीके पहले से ही दुनिया भर में अपनाए जा रहे हैं, जिससे उत्पादकता बढ़ी है और जल, मिट्टी एवं सूर्य की रोशनी के इस्तेमाल में कुशलता बढ़ी है।

इस पुस्तिका के अगले अध्यायों में प्रकृति के साथ सामंजस्य बिठाते हुए खेती (पर्मेकल्चर), जैविक खेती, प्राकृतिक खेती, बॉयो–डायनमिक खेती और कृषि–वानिकी जैसी पारिस्थितिकीय खेती के तौर तरीकों के बारे में बतलाया जाएगा। भारत में बहुसंख्यक छोटे एवं सीमांत किसान इन पद्धतियों के इस्तेमाल द्वारा पारिस्थितिकीय खेती कर रासायनिक, उर्वरक एवं कीटनाशक–आधारित खेती का एक विकल्प पेश कर सकते हैं। वे पारिस्थितिकीय खेती को अपना कर उपज–वृद्धि, संसासधों का संरक्षण और भारत की विशाल आबादी के लिए पर्याप्त मात्रा में खाद्याान्नों की पैदावार सुनिश्चित कर सकते हैं। नीचे दिए गए रेखाचित्र में बतलाया गया है कि किस प्रकार पारिस्थितिकीय खेती हमारी जिंदगी में एक समग्र बदलाव ला सकती है।

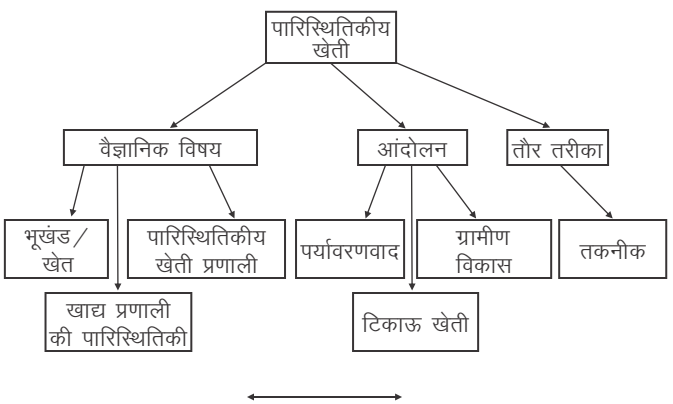

चित्र / आकृति–4 : एक विज्ञान के रूप में पारिस्थितिकीय खेती : एक आंदोलन और तरीका। एक समीक्षा।
स्रोत : Agronomy – Online at: http://www.agronomy-journal.org/articles/agro/full_html/2009/04/a8122/F1.html. Diagram retrieved from: http://www.agronomy-journal.org/articles/agro/full_html/2009/04/a8122/a8122-fig1.jpg

टिकाऊ खेती बनाम औद्योगिक तरीकों की खेती

उन्नीस सौ साठ (1960) के दशक में गेहूं और धान की लगातार बम्पर पैदावार होने से हरित क्रांति अत्यंत सफल नज़र आई थी। लेकिन, 1980 के दशक में उसके बुरे प्रभाव दिखने लगे। रासायनिक उर्वरकों और कीटनाशकों के इस्तेमाल के दुष्प्रभावों के रूप में एक बड़ी संख्या में कैंसर के मामले सामने आए, अत्यधिक दोहन से भूमिगत जल का स्तर चिंताजनक रूप में गिर गया, जो एक गंभीर मसला बन गया और उस पर शीघ्र ध्यान देना जरूरी था। भारत में रासायनिक उर्वरकों और कीटनाशकों के अत्यधिक इस्तेमाल की वजह से भूमि का कटाव भी हुआ और मिट्टी में खारापन आया, जिससे खेती कमजोर पड़ने लगी। देश के अनेक भागों में छोटे एवं सीमांत किसानों में लगातार बढ़ती गरीबी और उनकी कर्जग्रस्तता आम बात होने लगी। कई राज्यों में आत्महत्या करने वाले किसानों की संख्या तेजी से बढ़ी। इन समस्याओं के अलावा, कीटनाशकों और रासायनिक उर्वरकों के अत्यधिक इस्तेमाल से कई खरपतवारों और कीटों को उनका प्रतिरोधक बना दिया, जिससे फसलों का बुरी तरह नुकसान हुआ।

हरित क्रांति ने विश्व स्तर पर बड़े पैमाने पर औद्योगिक तरीकों की खेती को शुरू किया और लघु स्तरीय पारम्परिक खेती को हाशिए पर धकेल दिया। खेती एवं फसल उगाने का वाणिज्यीकरण किया गया और मोन्सेंटो जैसी कंपनियों ने खेती से भारी मुनाफा बटोरा। भारतीय खेती भी क्रमिक रूप से औद्योगिक तरीकों की खेती में तब्दील हुई और खाद्य सुरक्षा पाने के उद्देश्य से गेहूं एवं चावल जैसे खाद्यान्नों के उत्पादन में वृद्धि पर अधिकाधिक ध्यान केंद्रित किया गया। इस सघन और रसायन–आधारित खेती ने अनेक सीमांत और जीवन–निर्वाही किसानों को घोर गरीबी और कर्जगस्तता में धकेल दिया।

इसके विपरीत, टिकाऊ खेती लगातार बढ़ती भुखमरी, कुपोषण, बेरोजगारी और पर्यावरण में बिगाड़ की समस्या का एक समग्र समाधान पेश करती है। टिकाऊ खेती की पद्धतियां औद्योगिक तरीकों की खेती की वजह से पैदा हुई विकृतियों का दीर्घकालिक समाधान कर सकती हैं और उन छोटे एवं सीमांत किसानों को खेती में दोबारा वापस ला सकती है, जो अपनी खेती छोड़ चुके थे।

टिकाऊ खेती आम तौर पर खेत पर उपलब्ध संसाधनों एवं इनका बार–बार इस्तेमाल और पारम्परिक प्रबंधन के तौर तरीकों पर आधारित है, न कि बाजार से खरीदे गए उर्वरकों एवं कीटनाशकों पर। यह तरीका अपनाने से खेती की उत्पादन लागत में प्रभावपूर्ण कमी आती है। इसके अलावा, टिकाऊ खेती में भारी मशीनरी और महंगी प्रौद्योगिकी के बजाए मानव श्रम और पशुधन के मिले–जुले संसाधनों का उपयोग किया जाता है, जिससे छोटे एवं सीमांत किसानों के लिए खेती अधिक फायदेमंद बनती है।

हम इस अध्याय में उन कारकों पर गौर करेंगे, जो उत्पादन लागत, उत्पादकता, किसानों की आय और उपभोक्ताओं के लिए मूल्य की दृष्टि से औद्योगिकी तरीकों की खेती की तुलना में टिकाऊ खेती को बेहतर बनाते हैं।[8]

[8] Horrigan, Leo., Robert S. Lawrence, and Polly Walker, "How Sustainable Agriculture Can Address the Environmental and Human Health Harms of Industrial Agriculture", Environmental Health Perspectives, Vol. 110, Number 5, May 2002, pp. 445-456. Online at: https://www.leopold.iastate.edu/sites/default/files/2002-05-sustainable-agriculture.pdf

उत्पादन की लागत

भूमि : भूमि की खरीद, खेत को बटाई पर लेना, खेती की एक बड़ी लागत में शामिल है। मिट्टी की किस्म के मुताबिक भूमि की कीमत या किराया तय किया जाता है और पारम्परिक उत्पाद की फसलों के दाम खेती के तौर तरीकों के अनुसार तय नहीं किए जाते हैं। अतः भूमि की कीमत या किराया टिकाऊ खेती या औद्योगिक तरीकों की खेती में समान ही रहता है।

उर्वरक : पारिस्थितिकीय खेती या टिकाऊ खेती में दाल–प्रजातियों की फसलों (लेग्यूम्स) की खेती प्रमुख फसलों या रोटेशन के अंग के रूप में की जाती है ताकि खेत की मिट्टी में नाइट्रोजन, फोसफोरस और पोटेशियम (इन्हें मेक्रोन्यूट्रिएन्टेंट्स कहा जाता है) जैसे महत्वपूर्ण पोषक तत्वों के स्तर में वृद्धि हो। दाल–प्रजातियों की फसलों को मिट्टी में आवश्यक नाइट्रेट की पूर्ति करने वाला माना जाता है। किसान खेत की उर्वरता बढ़ाने के लिए जैविक खाद या कम्पोस्ट का उपयोग करता है। खेती का यह तरीका रासायनिक उर्वरकों और कीटनाशकों की लागत बचाता है। अधिकतर भारतीय किसान फसल उगाने के अलावा पशुपालन करते हैं, इसलिए जैविक खाद और कम्पोस्ट का उत्पादन खेत पर ही किया जा सकता है।[9]

कीटनाशक : पारिस्थितिकीय खेती करने वाले किसान अपने खेत की फसलों में रासायनिक कीटनाशकों का इस्तेमाल नहीं करते। इसके बजाए वे संकलित कीट का प्रबंधन करते हैं, जिसमें ट्रैप–फसलों (पाश–फसलों), मुख्य फसल के बीच अन्य फसलें उगाने (इंटरक्रॉपिंग), बहु–फसलीय उत्पादन (मल्टी–क्रॉपिंग), या शत्रु–कीट एवं खरपतवार पर नियंत्रण के लिए खेत में मित्र–कीट या जीवभक्षी और परजीवी छोड़ते हैं। इस प्रकार, टिकाऊ खेतों में कीटनाशकों की न के बराबर लागत आती है।[10]

बीज : टिकाऊ खेती में किसान स्वयं अपने बीज उगाते और अगली फसल के चक्र के लिए उन्हें बचाते हैं। इस प्रकार, बीजों पर लागत कम आती है और खेती की कुल लागत के अनुपात में बीज का लागत मूल्य बहुत कम हो जाता है। इसकी तुलना में औद्योगिक तरीकों की खेती में किसानों को बीजों की बहुत ऊंची कीमत चुकानी पड़ती है, विशेषकर संकर या बीटी कॉटन जैसे जीन परिवर्द्धित के बीजों की। वे इन बीजों को स्वयं नहीं बना सकते और न ही संरक्षित कर सकते हैं। इसलिए हर साल इन्हें खरीदना पड़ता है और बहुराष्ट्रीय कंपनियों पर निर्भर रहना पड़ता है।[11]

श्रम : औद्योगिक तरीकों की खेती की तुलना में टिकाऊ खेती में अधिक मानव श्रम की जरूरत पड़ती है। औद्योगिकी तरीकों की खेती में मशीनों का उपयोग होता है और एकल फसल पद्धति की खेती (मोनोक्रोपिंग) पर जोर दिया जाता है, जिससे बेरोजगारी और मौसमी बेरोजगारी का मार्ग प्रशस्त होता है। इसके विपरीत, टिकाऊ खेती के तौर तरीकों में बहु–फसलीय पद्धति और मुख्य फसल के बीच अन्य फसलों की पैदावार की जाती है, जिससे रोजगार सृजन होता है एवं साल भर छोटे किसानों के लिए कमाई के अवसर रहते हैं।

---

[9] Baldwin, Keith R. "Soil Fertility on Organic Farms", Organic Production, Center for Environmental Farming Systems, North Carolina State University United States. Retrieved from: http://www.cefs.ncsu.edu/resources/organicproductionguide/soilfertilityfinaljan09.pdf

[10] Ibid

[11] Shiva, Vandana. Dr. and Kunwar Jalees, "Seeds of Suicide: The Ecological and Human Costs of Seed Monopolies and Globalisation of Agriculture", Navdanya, May 2006. URL: http://www.navdanya.org. Retrieved from: http://www.navdanya.org/ attachments/WTO_and_Globalization2.pdf

भारत में खेती सेक्टर रोजगार के सर्वाधिक अवसर मुहैया कराता है। मशीनों के अत्यधिक इस्तेमाल के चलते औद्योगिक खेती में मनुष्यों, विशेषकर महिलाओं की भूमिका नकारी जाती है, जबकि महिलाएं बीजों की साज–संभाल, पौधारोपण, धान की कोपलों के रोपण, निराई, फसल की कटाई और छनाई में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकती हैं।

टिकाऊ या पारिस्थितिकीय खेती में महिलाओं की भी महत्वपूर्ण भूमिका होती है। औद्योगिक तरीकों की खेती में महिलाओं का कार्य अक्सर दिखलाई नहीं पड़ता। टिकाऊ खेती में खेत पर अधिक लोग काम करते हैं और खेती में उनकी महत्वपूर्ण भूमिका होती है, इसलिए भारत में रोजगार–जरूरतों के मद्देनजर टिकाऊ खेती ज्यादा अनुकूल है।

उत्पादकता

एक आम धारणा यह है कि औद्योगिकी तरीकों की खेती की तुलना में टिकाऊ खेती में कम उपज होती है। लेकिन, इसके विपरीत टिकाऊ खेती में बहु–फसलीय पद्धति और मुख्य फसल के बीच अन्य फसलों की पैदावार के चलते प्रति हेक्टेयर अधिक पैदावार हो सकती है।

औद्योगिक तरीकों की खेती के बजाए टिकाऊ खेती अपनाने से शुरूआती सालों में फसल की उत्पादकता में कुछ कमी आ सकती है। यह मिट्टी में रासायनिक उर्वरक एवं कीटनाशक की मौजूदगी से होता है और अधिक पैदावार पाने तथा गैर–रासायनिक खेती की तकनीकों की अभ्यस्त होने में मिट्टी को कुछ साल लग सकते हैं। लेकिन, 3–5 साल की अवधि में पारिस्थितिकीय खेती के तौर तरीकों से औद्योगिकी तरीकों की खेती की तुलना में अधिक पैदावार होती है।

किसान की आय

हरित क्रांति के जबर्दस्त शुरूआती विकास के दौरान, विशेषकर पंजाब, हरियाणा एवं आंध्र प्रदेश जैसे क्षेत्रों में बड़ी जोत वाले किसानों को अधिक उपज और अधिक मुनाफा मिला। लेकिन, 1990 के दशक के आते–आते विशेषकर मोटे अनाज, गन्ना, पटसन, कपास और आलू की खेती की पैदावार में भारी कमी देखी गई। इससे भारतीय किसानों की आजीविका पर प्रतिकूल असर पड़ा। इस बोझ को न झेल सकने वाले किसानों ने कर्ज लिया, जिससे वे इसके कुचक्र में फंस गए और अनेक किसानों को आत्महत्या करने को विवश होना पड़ा। इस निराशाजनक स्थिति ने कई किसानों को पारिस्थितिकीय खेती अपनाने को प्रेरित किया, जो न सिर्फ सस्ती, बल्कि पर्यावरण–हितैषी और रासायनिक खेती की तुलना में अधिक उत्पादनशील भी होती है।

एस. रविचंद्रन और उनके शोधार्थियों की टीम ने तमिलनाडु में धान के खेतों में एक अध्ययन किया और जैव–चीजों को न अपनाने वाले खेतों की तुलना में जैव चीजों के इस्तेमाल वाले खेतों का आर्थिक विश्लेषण किया। उन्होंने पाया कि जैव–चीजों को न अपनाने वाले खेतों (14,000 रु.) की तुलना में जैव–चीजों के इस्तेमाल वाले खेतों की शुद्ध आय अधिक (17,000 रु.) थी।[12]

उत्तराखंड के उधमपुर जिले में जैविक खेती के आर्थिक विश्लेषण संबंधी एक अध्ययन से भी इसी तरह के

[12] Kumar, Praduman., N.P. Singh and V.C. Mathur, "Sustainable Agriculture and Rural Livelihoods: A Synthesis", Agricultural Economics Research Review,Vol. 19 (Conference No.) 2006 pp 1-22., retrieved from: http://ageconsearch.umn.edu/bitstream/57774/2/Synthesis.pdf

नतीजे उजागर हुए। इस जिले के किसान संसाधनों की दृष्टि से कमजोर हैं और बहुत कम मात्रा में उर्वरकों एवं कीटनाशकों का इस्तेमाल करते हैं। जैविक खेती और गैर–जैविक खेती के धान का उत्पादन क्रमशः प्रति हेक्टर 29 क्विंटल एवं 33 क्विंटल था। इसी प्रकार, गेहूं में गैर–जैविक खेतों की तुलना में गेहूं के जैविक खेतों की उपज कम थी। लेकिन, जैविक खेती करने वाले किसानों को उनकी उपज का अधिक मूल्य मिला और इस प्रकार उनकी आय अपेक्षाकृत अधिक रही। महाराष्ट्र में गन्ने के जैविक और गैर–जैविक खेतों की शुद्ध लाभप्रदता की तुलना से पता चलता है कि गैर–जैविक खेतों में उपज कुछ अधिक रही, जबकि जैविक खेतों से मुनाफा अधिक मिला।[13]

यह दर्शाता है कि किसानों की आर्थिक खुशहाली और आजीविका सुरक्षा की दृष्टि से जैविक खेती करना बेहतर है। इससे खेती के टिकाऊपन में सुधार की भारी संभावनाएं रहती हैं।

उपभोक्ताओं के लिए मूल्य

जैसा कि ऊपर बताया गया है, किसानों को औद्योगिक तरीकों की खेती की तुलना में पारिस्थितिकीय तौर तरीकों से उत्पादित फसलों के ऊंचे मूल्य मिलते हैं। शहरी और ग्रामीण इलाकों में पारिस्थितिकीय तौर तरीकों से उत्पादित फसलों की भारी मांग है। इसलिए, कई रासायनिक कृषि व्यवसाय कंपनियां, विशेषकर उर्वरक एवं कीटनाशक कंपनियां पारिस्थितिकीय खेती को अपने व्यवसाय के लिए एक खतरे के रूप में देखती हैं और अक्सर पारिस्थितिकीय तौर तरीकों के खिलाफ दुष्प्रचार अभियान चलाती हैं।

इसके अलावा, उपभोक्ता अक्सर रासायनिक उर्वरकों से उत्पादित खाद्यान्नों के उपभोग से होने वाले पर्यावरण और स्वास्थ्य संबंधी नुकसानों की अनदेखी करते हैं। रासायनिक कीटनाशकों और उर्वरकों के अत्यधिक इस्तेमाल से मिट्टी के उपजाऊपन में गिरावट आती है। पौधे इनमें से कई रसायनों को सोख लेते हैं और उनका जानवरों, पक्षियों, कीड़ों–मकोड़ों एवं मनुष्यों में संचारण होता है। ये उर्वरक और कीटनाशक मिट्टी के साथ भूमिगत पानी या नदियों में भी बह जाते है, जिससे पेयजल के स्रोत प्रदूषित होते हैं। कीटनाशकों का बढ़ता उपयोग कीटों में परिवर्तन लाता है, जिससे वे रसायनों के प्रतिरोधी बनते हैं। इसका एक उदाहरण डी. डी.टी. (डिक्लोरो डिफेनाइल ट्रिक्लोरोइथैन/Dichloro Diphenyl Trichloroethane) है, जिसका कृषि संबंधी कीटनाशी के रूप में इस्तेमाल किया जाता था। यह डी.डी.टी. प्रतिरोधी कीटों के पनपने के साथ प्रभावहीन बन चुका है।

स्वास्थ्य पर लागत

औद्योगिक तरीकों की खेती के जरिए उत्पादित खाद्यान्नों के उपभोग से उपभोक्ता के स्वास्थ्य पर काफी प्रभाव पड़ता है। इसके कारण हारमोन से जुड़ी बीमारियां एक बड़ा चिंताजनक मसला है। कई वैज्ञानिक कैंसर के बढ़ते प्रकोप का प्रमुख कारण खेती में रसायनों का इस्तेमाल मानते हैं।

पंजाब में किए गए पहले राज्यव्यापी सर्वेक्षण में पाया गया कि राज्य में कैंसर से प्रतिदिन 18 लोगों की मौत होती है। पिछले पांच सालों में कैंसर से लगभग 33,318 लोगों की मौत हुई है। पंजाब का मालवा क्षेत्र देश में

[13] Singh, Joginder. Dr. "Impact Assessment study of Center of Organic Farming I & II, Uttarakhand State", Sir Ratan Tata Trust, December, 2009. Retrieved from: http://www.srtt.org/institutional_grants/pdf/COF.pdf

कैंसर से होने वाली मौतों में सबसे ऊपर है।[14]

पश्चिमी देशों के लोग औद्योगिक तौर तरीकों से उत्पादित एवं तैयार किए जाने वाले फास्ट फूड आहार से मोटापे, हाई कोलेस्टेरोल और दिल की बीमारियों के शिकार हो गए हैं। हम भी तेजी से इसी तरह की जीवनशैली की दिशा में आगे बढ़ रहे हैं।

इस स्थिति में किसानों को भी समस्याएं झेलनी पड़ती हैं। कीटनाशकों एवं उर्वरकों के इस्तेमाल के दौरान उनका धुआं (फ्यूम्स) किसानों के शरीर में प्रवेश करता है, जिससे फेफेड़े की बीमारियां होती हैं। इसके साथ–साथ किसान एक उपभोक्ता के रूप में भी उपरोक्त अतिरिक्त स्वास्थ्य संबंधी खतरों के शिकार बनते हैं।

सतही तौर पर लगता है कि पारिस्थितिकीय उत्पाद महंगे और रसायनों के इस्तेमाल से उत्पादित खाद्य पदार्थ सस्ते होते हैं। लेकिन, उपभोक्ताओं के स्वास्थ्य पर पड़ने वाले कुप्रभावों के मद्देनजर जैविक उत्पाद दीर्घकालिक दृष्टिकोण से बहुत सस्ता विकल्प है।

तालिका–1 : टिकाऊ खेती बनाम औद्योगिक तरीकों की खेती

	टिकाऊ खेती	**औद्योगिक तरीकों की खेती**
उत्पादन की लागत :	समग्र रूप से कम	समग्र रूप से अधिक
1. भूमि	लगभग समान	लगभग समान
2. उर्वरक	रासायनिक उर्वरकों का इस्तेमाल नहीं	हानिकारक रासायनिक उर्वरकों का इस्तेमाल
3. कीटनाशक	रासायनिक कीटनाशकों का बिल्कुल इस्तेमाल नहीं	रासायनिक कीटनाशकों का इस्तेमाल
4. बीज	थोड़े से महंगे, पर उत्पादन की कुल लागत का एक छोटा भाग होता है	अपेक्षाकृत महंगे
5 श्रम	श्रमिक की अधिक जरूरत	मशीनरी से खेती, इसलिए श्रमिक की कम जरूरत
उत्पादकता	अपेक्षाकृत अधिक या समय बीतने के साथ समान	समय बीतने के साथ गिरावट आती है
किसानों को आय	उत्पादन की कम लागत, इसलिए शुद्ध आय अपेक्षाकृत अधिक	उत्पादन की अधिक लागत और कम आय होना
उपभोक्ताओं के लिए मूल्य	अपेक्षाकृत थोड़ा महंगे होते हैं	सस्ते, पर स्वास्थ्य संबंधी समस्याएं होती हैं और पर्यावरण में बिगाड़ से जीवन की समग्र लागत में वृद्धि

[14] "18 die of cancer in Punjab everyday". Tribune News Service, 28 January, 2013. Retrieved from Indian Agrarian Crisis, online at: http://agrariancrisis.in/2013/01/31/18-die-of-cancer-in-punjab-everyday/

पारिस्थितिकीय खेती की विभिन्न पद्धतियां

पिछले दो दशक से पारिस्थितिकीय खेती नामक खेती की एक नई प्रणाली ने अनेक देशों में छोटे और सीमांत किसानों का विश्वास प्राप्त किया है। पारिस्थितिकीय खेती के अनेक प्रकार है, जिसमें प्रकृति के साथ सामंजस्य बिठाते हुए खेती (पर्मेकल्चर), कृषि–वानिकी, जैविक खेती, बॉयो–डायनमिक खेती, पारिस्थितिकीय खेती, जैविक खाद, हरित खाद, मुख्य फसल के बीच अन्य फसलों की पैदावार (इंटरक्रॉपिंग), जैविक कीट नियंत्रण आदि शामिल है। इसमें से कुछ पारिस्थितिकीय तौर तरीके भारत में लोकप्रिय हो रहे हैं, जिनकी आगे उप–भागों में चर्चा की जाएगी।

प्रकृति के साथ सामंजस्य बिठाते हुए खेती (पर्मेकल्चर)

बील मोलिसन और डेविड होमग्रेन द्वारा विकसित खेती का एक समग्र तरीका प्रकृति के साथ सामंजस्य बिठाते हुए खेती (पर्मेकल्चर) है, जो छोटे किसानों को उनकी भूमि को दूषित या नष्ट किए बिना एक सभ्य जीवन जीने में सक्षम बनाता है। यह तरीका उन्हें जल एवं भूमि की सावधानीपूर्वक व्यवस्था करने और मनुष्यों एवं पर्यावरण की रक्षा को समर्थन देने वाले एक पारस्थितिकी तंत्र बनाने में मददगार होता है। यह तरीका प्रकृति के साथ टकराव नहीं, बल्कि सहयोग के सिद्धांत पर आधारित है। प्रकृति के साथ सामंजस्य बिठाते हुए खेती (पर्मेकल्चर) अब अनेक अमीर और गरीब देशों में व्यक्तियों एवं समूहों के रूप में एक बड़े आंदोलन के रूप में फैल चुकी है। प्रकृति के साथ सामंजस्य बिठाते हुए खेती (पर्मेकल्चर) का मतलब है– ''मनुष्यों के लिए उपयोगी बारहमासी या स्वयं को बनाए रखने वाले पौधों एवं पशु प्रजातियों की एक समन्वित–विकसित प्रणाली।''[15]

प्रकृति के साथ सामंजस्य बिठाते हुए खेती में एक टिकाऊ, पुनर्जनन और बहाली के तरीके से मनुष्यों की जरूरतों की पूर्ति के लिए प्रकृति के अनुकूल चला जाता है। यह इस विचार पर आधारित है कि हमारे धरती ग्रह पर सीमित संसाधन है और मानव उपभोग एवं औद्योगिक संवृद्धि (इंडस्ट्रियल ग्रोथ) की कुछ सीमाएं होनी चाहिए।

प्रकृति के साथ सामंजस्य बिठाते हुए खेती के सिद्धांत

प्रकृति के साथ सामंजस्य बिठाते हुए खेती की आधारशिला नैतिक सिद्धांतों के पालन पर टिकी हुई है। प्रकृति के साथ सामंजस्य बिठाते हुए खेती के तीन नैतिक सिद्धांत हैं :[16]

1. धरती की देखभाल,
2. लोगों की देखभाल, और
3. सरप्लस (अधिशेष) को धरती एवं लोगों को लौटाना (इसे समुचित हिस्सा भी कहा जाता है)।

[15] Mollison, Bill. Holmgren, David. "The Origin of Permaculture", Holmgren Design: Permaculture vision and innovation, retrieved from http://holmgren.com.au/about-permaculture/

[16] "Pemaculture Ethics", Deep Green Permaculture, retrieved from: http://deepgreenpermaculture.com/permaculture/permaculture-ethics/

प्रकृति के साथ सामंजस्य बिठाते हुए खेती मूल रूप से दीर्घकालिक नियोजन की एक डिजाइन प्रणाली है, इसलिए इस प्रकार की खेती का खेत बनाने के लिए निम्नलिखित सिद्धांतों का पालन किया जाना चाहिए:[17]

1. अपेक्षाकृत स्थान : प्रकृति के साथ सामंजस्य बिठाते हुए खेती की डिजाइन (रूपरेखा) में प्रत्येक भाग पारस्परिक फायदे पाने के लिए अन्यों के साथ तालमेल और रिश्ता रखा जाता है।
2. विविध कार्य : इसमें इस सिद्धांत का पालन किया जाता है कि प्रत्येक अंग कई कार्य करता है। प्रकृति के क्रम के मुताबिक कुशल ढंग से खेती के तरीके के लिए इसकी डिजाइन में प्रत्येक अंग को इस तरह रखा जाए कि यह यथासंभव कई कार्य पूरा करे। इसके लिए डिजाइन के हर एक अंग की व्यापक जानकारी जरूरी है।
3. प्रत्येक कार्य को कई अंगों का समर्थन मिले : यह सिद्धांत प्रत्येक अंग (जैसे जल, खाद्यान्न, ऊर्जा, अग्नि से रक्षा) के कार्यों की पहचान पर जोर देता है और सुनिश्चित करता है कि दो या अधिक तरीकों से महत्वपूर्ण कार्यों को समर्थन मिले।
4. जोन एवं सेक्टर : ऊर्जा के कुशल नियोजन के लिए प्रकृति के साथ सामंजस्य बिठाते हुए खेती के खेत में ऊर्जा के असरदार ढंग से इस्तेमाल के लिए जोन एवं सेक्टर होना चाहिए। इस प्रकार, पेड़, पौधे, ढांचे और भवनों की योजना बनाई जाती है ताकि वे सूर्य की रोशनी, हवा, जल संसाधनों का कुशल ढंग से उपयोग करें।
5. जैविक संसाधनों का उपयोग : कार्य करने और ऊर्जा संरक्षण के लिए जैविक संसाधनों का कुशल ढंग से उपयोग किया जाता है। प्रकृति के साथ सामंजस्य बिठाते हुए खेती की डिजाइन में डीजल, पेट्रोल या कोयले जैसे गैर–नवीकरणीय ऊर्जा स्रोतों के उपयोग के बजाए अधिकतर कार्यों के लिए पौधों और जानवरों का उपयोग किया जाता है।
6. ऊर्जा की साइक्लिंग (पुनर्चक्रण) : यह सिद्धांत खेत पर ऊर्जा पाने, भंडारण एवं उपयोग द्वारा ऊर्जा के पुनर्चक्रण से संबंधित है। सौर ऊर्जा के स्रोतों और अन्य नवीकरणीय ऊर्जा स्रोतों का अधिकतम उपयोग किया जाता है।
7. लघु–स्तरीय सघन प्रणालियां : प्रकृति के साथ सामंजस्य बिठाते हुए खेती की प्रणालियां लघु स्तरीय कार्यों के लिए की जाती हैं ताकि उनका आसानी और कुशलता से प्रबंधन हो सके।
8. वृद्धि एवं विकास में तेजी : इसमें अनुकूल खेत एवं मिट्टी बना कर पौधे का तेजी से विकास होता है, जिससे उन पौधों को उगा कर प्रकृति को अपनी सहज भूमिका निभाने का मौका मिलता है, जो मिट्टी को प्राकृतिक रूप से पुनर्निर्मित करते हैं।
9. विविधता : प्रकृति के साथ सामंजस्य बिठाते हुए खेती में एक से अधिक फसल पैदा की जाती है और एक उत्पादनशील एवं पारस्परिक–क्रियात्मक प्रणाली के लिए लाभदायक प्रजातियों को समर्थन मिलता है। इसमें एक समय में पौधे या पशु की एक से अधिक प्रजातियों के लिए बहु–फसलीय पद्धति से और बदल–बदल कर फसलें उगाने (क्रॉप रोटेशन) का अवसर मिलता है तथा अधिक विविधता मिलती है।
10. किनारों या सिरों का असर : इस सिद्धांत से बेहतरीन असर के लिए किनारे और प्राकृतिक क्रम के उपयोग का मौका मिलता है। इसमें बेहतर उत्पादकता के लिए प्रकृति में पाए जाने वाले प्राकृतिक क्रम को अपनाया जाता है।

[17] ibid

11. सिक्के के दो पहलू का सिद्धांत : यह इस विचार पर आधारित जन–केंन्द्रित सिद्धांत है : (अ.) कोई भी चीज दो तरीके से कार्य करती है, और (ब) प्रकृति के साथ सामंजस्य बिठाते हुए खेती सूचना एवं कल्पना–सघन है। उदाहरणार्थ, यदि लगातार तेज हवा किसी छोटे किसान की फसलें नष्ट करती है तो यह उसके लिए नुकसानदायी है। यह वायु ऊर्जा एक छोटा विंडमिल (हवा चक्की) लगाने के जरिए वायु एकत्रित कर फायदे के रूप में भी तब्दील किया जा सकता है या फिर वायु के रास्ते में पेड़ों को उगाया जाता है और उनके बीच में उन फसलों को लगाया जाता है, जो उनकी छाया में विकसित हो सकें।

केस स्टडी : दक्षिण कर्नाटक में पुनरवासु परिवार का खेत[18]

दक्षिण कर्नाटक के समुद्री तट से 3 किमी. और उड़ीपी से लगभग 15 किमी. दूरी पर पुनरवासु परिवार का 5 एकड़ का एक खेत है। इस परिवार ने 2007 में प्रकृति के साथ सामंजस्य बिठाते हुए खेती करना शुरू किया। उन्होंने पहले साल में एक बड़ी जल संचयन प्रणाली और दो जलग्रहण तालाब (एक खेत से ऊपरी स्तर पर और दूसरा खेत के मध्य में) के निर्माण के साथ–साथ पूरे खेत में जल प्रवाह को धीमा करने के लिए कुछ गुल्ली प्लग बनवाए। उन्होंने उपयोग में ला चुके हुए मटमेले पानी (Gray Water) के पुनः इस्तेमाल की प्रणालियां भी स्थापित कीं, जिसे बर्तन एवं कपड़े धोने के उपयोग में लिया गया। दूसरे साल के दौरान भी उन्होंने मटमेले पानी (Gray Water) के पुनः इस्तेमाल की प्रणालियां स्थापित कीं, जिसमें एक घर के अंदर की नाली का और दूसरा गुसलखाने की नाली का उपयोग में लाया हुआ पानी नर्सरी में सिंचाई के उपयोग में लाया गया। इसके बाद उन्होंने नारियल एवं काली मिर्च के बगीचे में कोको और काजू के कुछ पौधे लगाए। उन्होंने एक सोलर ड्रायर (सूरज की किरणों से सुखाने वाला यंत्र) एवं एक लघु पोली–हाउस के निर्माण द्वारा प्रयोग भी किया और अनानास, मीठे आलू और पपीता के बगीचे में केले के पेड़ के कटे हुए तनों से मेढ़बंदी की एवं उनका मल्चिंग में उपयोग किया। इसके बाद उन्होंने खाना पकाने के लिए एक बॉयोगैस संयंत्र भी लगाया। बाद में उन्होंने गायों के खलियान को अतिथियों के आवास के रूप में तब्दील भी किया, जलग्रहण क्षेत्र का विस्तार किया, एक वन–बगीचा बनाया और केले के हलकों में मेढ़बंदी एवं पौधारोपण जारी रखा। वे प्रतिवर्ष अपने खेत पर कार्यशाला एवं प्रशिक्षण भी लगाते हैं ताकि लोग खुद खेती करके जानकारी प्राप्त करें। वे अपने पुराने पारिवारिक खेत पर रहते हैं और खेत में उगाए खाद्यान्नों का ही सेवन करते हैं।

चित्र–5 : कृषि–वानिका का एक नमूना।
स्रोत : Planet for a Future: http://www.pfaf.org/UserFilesCms/Gua-2004-21.jpg

कृषि–वानिकी

कृषि–वानिकी एक तरीका है, जो भूमि प्रबंधन के जरिए खेत का उत्पादन बढ़ाता है। इस तरीके में खेती प्रणाली में पेड़ शामिल किए जाते हैं ताकि उसी भूखंड का पेडों, फसलों और पशुधन के लिए उपयोग किया जाए। एक ही भूखंड पर खेती की वार्षिक गतिविधियों (जैसे फसलें उगाना एवं चरागाह) और पेडों के देरी

[18] "Punarvasu Demonstration Site, South Karnataka Coast, India", Itinerant Permaculture. Retrieved from: http://i-permaculture.org/itinerant-permaculture/

से दीर्घकालिक उत्पादन (उदाहरणार्थ, लकड़ी एवं सेवाएं) में कृषि–वानिकी और उत्पादन साथ–साथ चलते हैं। और, यह तभी संभव है, जब खेती के भूखंड पर पौधारोपण या वन क्षेत्रों में फसलों का रोपण किया जाए।

भारत में लंबे समय से कृषि–वानिकी की जाती रही है। ऐतिहासिक तौर पर पाते हैं कि कई क्षेत्रों में किसानों ने खेतों में पेडों को उगने दिया है। देश भर में कई रूपों में कृषि–वानिकी की जाती है, जिससे स्थानीय समुदायों को ईंधन एवं लकड़ी मिलती हैं और पल्प (लुगदी), कागज और अन्य लकड़ी–आधारित उद्योगों को कच्ची सामग्री मिलती है। भारत में मुख्य रूप से अपनाई जाने वाली प्रमुख कृषि–वानिकी प्रणालियां पश्चिमी एवं पूर्वी हिमालयी क्षेत्रों में कृषि–वनसंवर्धन (एग्रो–सिल्विकल्चर / agri-silviculture) और कृषि–बागवानी, गंगा के ऊपरी एवं मैदानी क्षेत्रों में कृषि–बागवानी–वन–संवर्धन और दक्षिणी पठार एवं पहाड़ी क्षेत्रों में कृषि–वनसंवर्धन और वनसंवर्धन–चरवाही (सिल्विपेस्टोरल / silvi-pastoral) प्रणालियां हैं।[19]

भारत के वन सर्वेक्षण के एक अनुमान के अनुसार देश में वन क्षेत्र के बाहर 2.68 बिलियन (268 करोड़) पेड़ उगाए जाते हैं, जिससे सालाना ईंधन की 201 मिलियन (20 करोड़ 10 लाख) टन जलावन की लकड़ी और 64 मिलियन (6 करोड़ 40 लाख) क्यूबिक इमारती लकड़ी की आपूर्ति होती है।[20] उपज बढ़ाने और मिट्टी के स्वास्थ्य में सुधार लाने में कृषि वानिकी की भूमिका पर भारत में अनेक अध्ययन किए गए हैं। खेतों पर पेड़ उगाने से इमारती लकड़ी, जलाने की लकड़ी और अन्य उत्पाद मिलते हैं, जो खेती करने वाले परिवारों के लिए उपयोगी हैं। पेड़ हवाओं से बचाव कर फसलों की रक्षा कर सकते हैं। वे सौर रेडियोधर्मिता को परिवर्द्धित (मॉडिफाई) कर सकते हैं, जो जल के वाष्पीकरण को घटाता है और मिट्टी में नमी बनाए रखने में मददगार है। जहां कृषि–वानिकी व्यापक रूप से की जाती है, वहां से एकत्रित मिट्टी के नमूनों से उजागर हुआ है कि यह तरीका नाइट्रोजन लीचिंग (खेत के बाहर बहाव) में 50 प्रतिशत कमी लाता है। इसी प्रकार, एकल फसल पद्धति की फसलों (मोनोकल्चर क्रॉप्स) की तुलना में इन पेड़ों की जड़ें गहराई तक फैलती है, जो मिट्टी में अधिक पोषक तत्वों को सोख लेती हैं। जब इन पेड़ों के सूखे पत्ते खेत में गिरते हैं तो वे भी फसलों को पोषक तत्व उपलब्ध कराते हैं।

उत्पादकता की दृष्टि से पाया गया है कि 100 हेक्टेयर की कृषि–वानिकी (जहां पेड़ों के बीच खेती की जाती है) 140 हेक्टेयर जितने खेत के बराबर फसल पैदा करती है क्योंकि यहां पेड़ों और फसलों का रोपण अलग–अलग किया जाता है। यह असर कृषि–वानिकी भूखंडों पर पेड़ों और फसलों के बीच उद्दीपन (स्टिमुलेशन) की पूरकता की वजह से होता है। जो खरपतवार युवा वानिकी पौधारोपण में अचानक मौजूद हो जाते हैं, उनकी जगह फसल या चरागाह ले लेती है। इस प्रकार, इन फसलों का रखरखाव कम खर्चीला है और भूमि संसाधनों का बेहतर उपयोग होता है। मुनाफे की दृष्टि से एकल फसल पद्धति की तुलना में कृषि–वानिकी से समान या अधिक आय होती है।

---

[19] Rizvi, R.H., Dhyani, S.K., Yadav, R.S., Singh, Ramesh. "Biomass production and carbon stock of poplar agro-forestry systems in Yamunanagar and Saharanpur districts of northwestern India", National Research Centre for Agro-forestry, Jhansi, Current Science, Vol. 100, No. 5, 10 March 2011, pp. 736-742. Retrieved from: http://www.indiawaterportal.org/sites/indiawaterportal.org/files/Biomass%20Production%20%26%20Carbon%20Stock_Poplar%20Agro-forestry%20Systems_%20Yamunanagar%20and%20Saharanpur_Current%20Science_2011.pdf.

[20] Singh, Vijai Shanker., Pandey, Deep Narayan. "Multifunctional Agro-forestry Systems in India : Science-Based Policy Options", Climate Change and CDM Cell Rajasthan State Pollution Control Board Jaipur, RSPCB Occasional Paper, No. 4/2011, 2011, p.5. Retrieved from: Environment Portal, online at: http://environmentportal.in/files/file/multi_Ag_System.pdf

कृषि–वानिकी की प्रयोगात्मक केस स्टडी

राष्ट्रीय कृषि–वानिकी शोध केंद्र ने 2009–10 के दौरान उत्तर प्रदेश के झांसी में किसानों के खेतों पर कृषि–वानिकी का एक प्रयोगात्मक अध्ययन किया। इस अध्ययन का मुख्य उद्देश्य खेत की क्षमता और गेहूं एवं दालों की खेती के बीच बांस उगाने की किसानों की रूचि का मूल्यांकन करना था। अध्ययन की रिपोर्ट में कहा गया कि किसानों ने कृषि–वानिकी के तहत खेत की सीमा में बांस उगाने में गहरी दिलचस्पी दिखाई। उन्होंने हस्तिनापुर गांव में श्री हरपाल सिंह राजपूत के खेत में प्रति हेक्टेयर 85 बम्बुसा वलगरिज (बांस) का रोपण किया। उन्होंने खरीफ सीजन में प्रति हेक्टेयर 282 किलो मूंगफली और रबी सीजन में प्रति हेक्टेयर 3,756 किलो गेहूं की फसल काटी। उन्होंने श्री शोभा राम राजपूत के खेत में डेन्ड्रोपिकल क्लम्पिंग स्ट्रिक्टस (मेल बम्बू, सोलिड बम्बू या कलकत्ता बम्बू) नामक दक्षिणपूर्व एशिया के मूल के उष्णकटिबंधीय एवं उप–उष्णकटिबंधीय बांस के (2 हेक्टेयर में करीब 280) पौधो की प्रजातियों का रोपण किया। उन्होंने खरीफ सीजन में उड़द (प्रति हेक्टेयर 515 किलो), मूंग (प्रति हेक्टेयर 525 किलो), मूंगफली (प्रति हेक्टेयर 550 किलो) की फसल काटी। उन्होंने रबी सीजन में वार मालविया 234 गेहूं (प्रति हेक्टेयर 3,260 किलो) की फसल काटी। बांस के पौधों का इन फसलों पर कोई विपरीत प्रभाव नहीं देखा गया।[21]

नोट : आगे आने वाले ''खेती में पेड़ों का महत्व'' के अध्याय में कृषि–वानिकी का और भी विवरण दिया गया है।

वन बागवानी

वन बागवानी प्राकृतिक हरियाली के क्रम में पौधों और पेड़ों पर आधारित एक कम रखरखाव वाली टिकाऊ खाद्य उत्पादन प्रणाली है। यह पारस्थितिकीय तरीका कृषि–वानिकी जैसा है और इससे वैसा ही लाभ भी होता है। इसमें फल एवं अखरोट के पेड़, झाड़ियां, जड़ी–बूटियां, लताएं एवं बारहमासी सब्जियां उगाई जाती हैं, जिनकी फसल मनुष्यों के लिए भी कभी लाभदायक है।

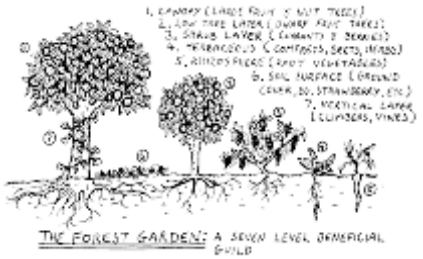

चित्र–6 : वन बगीचे की सात परतें।
स्रोत : http://www.lend-a-hand-india.org/Permaculture%20Picture%202%20(400%20x%20251).jpg

उष्णकटिबंधीय क्षेत्रों में वन उद्यान या गृह उद्यान सर्वाधिक लोकप्रिय हैं। भारत में यह तरीका केरल एवं उत्तरपूर्व में व्यापक रूप से अपनाया जाता है। उदाहरणार्थ, केरल के किसी भी वन उद्यान में नारियल के पेड़, काली मिर्च, कोको और अनानास के पेड़ मिलेंगे।

[21] Dhyani, S.K., Ahlawat, S.P., Palsaniya, D.R. (Eds.), "Development of Bamboo based Agro-forestry Systems for Six Agro-climatic Zones" Eds.) National Research Centre for Agro-forestry, Jhansi (U.P.). Retrieved from the website of National Bamboo Mission, online at: http://nbm.nic.in/Reports/ICAR_Jhansi.pdf

धान सघनीकरण विधि (एस.आर.आई.)

1980 के दशक में मैडागास्कर में गहन श्रम और जैविक खेती के जरिए कम पानी का इस्तेमाल करते हुए चावल की पैदावार बढ़ाने के लिए धान सघनीकरण विधि (एस.आर.आई.) विकसित की गई थी। कॉरनेल इंटरनेशनल इंस्टीट्यूट फोर फूड एंड एग्रीकल्चर के डा. नॉर्मन उपहॉफ ने 1990 के दशक के अंत में यह विधि दुनिया के सामने रखी थी।[22] भारतीय किसानों द्वारा अब यह तरीका व्यापक रूप से अपनाया जाता है और सरकारी एजेंसियां भी इसको बढ़ावा दे रही हैं।

एस.आर.आई., खेती के अनेक तरीकों का एक मिश्रण है, जिसमें नर्सरी के प्रबंधन में बदलाव, प्रतिरोपण का समय, जल एवं खरपतवार का प्रबंधन शामिल है। इसमें सावधानीपूर्वक और शीघ्रता से चौड़ी जगह रखते हुए एक–एक नए बीज–अंकुरों का प्रतिरोपण किया जाता है, जो पानी में लगातार डूबे नहीं रहते और जहां मिट्टी में अधिक जैविक पदार्थ होता है और पौधों को उचित वायु मिल पाती है।

चित्र–7 : एक एकल चावल का बाल–पौधा। एस. आई.आई पद्धति चावल के पौधों की जड़ें गीली होने से बचाती है। जड़ों, बीज और मिट्टी के कचरे के साथ सही–सलामत चावल के बाल–पौधा। स्रोत : http://awsassets.wwfindia.org/img/rice_14_single_plant_161066_32159.jpg

धान सघनीकरण विधि की खेती पद्धति[23]

एस.आर.आई. को अपनाते समय किसानों को चाहिए कि वे नर्सरी (पौधक्यारी) से निकाल कर खेत में बीज के पौधों के प्रतिरोपण में अत्यधिक सावधानी बरतें क्योंकि ये पौधे सिर्फ 8–15 दिन के होते हैं। एक एकड़ में प्रतिरोपण के लिए नर्सरी क्यारी 40 वर्ग मीटर के भूखंड में फैली (छोटी क्यारियां, प्रत्येक 1.25 मीटर ग 8 वर्ग मीटर के आकार में) हुई हो। इस क्यारी में खेत का खाद इस्तेमाल किया जाए और चार वैकल्पिक परतों में मिट्टी हो :

पहली परत : अच्छी तरह गला खेत का खाद एक इंच (2.54 सेमी.) मोटाई में,

दूसरी परत : 1.5 इंच (3.75 सेमी.) मिट्टी,

तीसरी परत : अच्छी तरह गला खेत का खाद एक इंच (2.54 सेमी.) मोटाई में, और

चौथी परत : 2.5 इंच (6.3 सेमी.) मिट्टी।

इन सभी परतों को अच्छी तरह मिश्रित किया जाए ताकि जड़ें आसानी से घुसें। कम्पोस्ट या वर्मीकम्पोस्ट (केंचुए की खाद) का

[22] "System of Rice Intensification", retrieved from: http://www.sri-india.net/html/aboutsri.html
[23] ibid

भी उपयोग किया जा सकता है और यह 3–5 सेमी. की परत में फैला हुआ हो। अतिरिक्त पानी की निकासी के लिए सिंचाई चैनल्स (0.5–1 फुट चौड़े) बना कर सभी तरफ से उपयुक्त चैनल प्रदान करें। मिट्टी के कटाव की रोकथाम के लिए लकड़ियों की कटनियों, पटरों या धान के पुआल से क्यारियों को दबाएं।

बीज उपचार (सीड ट्रीटमेंट)

प्रत्येक एकड़ में प्रतिरोपण के लिए लगभग 2 किलो बीजों की जरूरत पड़ती है। बीजों को 24 घंटे तक जल के बड़े कंटेनर में भिगोया जाता है। सक्षम बीज पैंदे में नीचे बैठ जाते हैं और असक्षम बीज सतह पर तैरते हैं, जिन्हें आसानी से हटाया जा सकता है। तब, उपचारित बीजों को जल से तर–बतर बोरी में दबा दिया जाता है और उन्हें 24 घंटे तक रखा जाता है। बीजों के अंकुरित होने पर उन्हें नर्सरी की क्यारी में लगाया जाता है। बीजों को बीज क्यारी में मिट्टी के अच्छे ढांचे में गैर–घने ढंग से बोया जाता है। इससे प्रत्येक पौधे को उगने की जगह मिलती है, जड़ें आसानी से विकसित होती हैं और उलझती नहीं हैं।

प्रतिरोपण[24]

प्रतिरोपण से पहले मुख्य खेत को अच्छी तरह पानी से भरा और समतल होना चाहिए। समतलीकरण के बाद भूखंड को चौड़ी जगहों (जैसे 25 सेमी. ग 25 सेमी. की पंक्ति–दर–पंक्ति और पौधा–दर–पौधा) में व्यवस्थित करने के लिए किसी मार्कर (चिन्हक) का उपयोग किया जा सकता है। यह रस्सी की मदद से भी चिन्हित किया जा सकता है।

धान की खेती के परम्परागत तरीके में 25–30 दिन की उम्र के बाल–पौधों की तुलना में 8–12 दिन की उम्र के बौल पौधों के प्रतिरोपण का फायदा यह है कि 2–3 पत्ते वाला युवा धान बाल–पौधों में वृद्धि एवं जड़ के विकसित होने की अपार संभावनाएं होती हैं।

पोषक तत्व की आवश्यकता[25]

टिकाऊ खेती करने वाले किसानों को एस.आर.आई. के लिए सिर्फ जैविक खाद या वर्मीकम्पोस्ट का उपयोग करना चाहिए क्योंकि ये बेहतर नतीजे देते हैं और मिट्टी की स्थिति में सुधार लाते हैं। जुताई से पहले खेत का खाद या कम्पोस्ट (प्रति हेक्टेयर 10–12 टन) धान के पौधों को पर्याप्त पोषण देगा। पौधों के विकास के लिए 45–60 दिन पुराना हरित खाद का भी इस्तेमाल किया जा सकता है।

नोट : कीटों और कीड़े–मकोड़ों के प्रबंधन के लिए कृपया जैविक कीटनाशकों पर अध्याय देखें।

जल की आवश्यकता[26]

धान की परम्परागत तरीकों की खेती के विपरीत एस.आर.आई. पद्धति में खेत को पानी में डूबो कर रखने की जरूरत नहीं पड़ती। प्रारंभ में मिट्टी में नमी बनाए रखने के लिए जल सिंचाई की जाती है। जब मिट्टी की सतह में बाल बराबर पतली रेखाएं फटती हैं तो पानी डाला जाता है। मिट्टी की किस्म और रूप के आधार पर रह–रहकर पानी दिया जाता है। कम पानी जमा रखने की क्षमता वाली मिट्टी में बार–बार पानी देने की जरूरत होती है।

---

[24] "System of Rice Intensification (SRI) - Principles and Methods", Directorate of Rice Development, Patna. Retrieved from: http://drd.dacnet.nic.in/Downloads/SRI-Book-Part1.pdf

[25] ibid.

[26] ibid.

खेत को जल–प्लावित न करने के फायदे

खेत को जल–प्लावित न करने से धान के पौधे सभी दिशाओं में गहरे और स्वस्थ रूप से विकसित होते हैं। चौड़ी जगहों में चावल के पौधे लगाने से उनकी जड़ें व्यापक रूप से विकसित होती हैं। रह–रहकर सिंचाई के तरीके से लघु जीव पैदा होते हैं और जमीन में पनपते हैं, जिससे पौधों को पोषक तत्व मिलते हैं।

निराई[27]

निराई के समय खेत में 2–3 सेमी. तक पानी की सिंचाई की जानी चाहिए। निराई पूरी होने के बाद पानी खेत से बाहर न निकाला जाए। एस.आर.आई. विधि में पानी जमा नहीं रहता, इसलिए खरपतवार होना आम बात होती है। असरदार निराई और खरपतवार को मिट्टी में दबाने के लिए एस.आर.आई. विधि में वीडर ूमकमतद्ध नामक एक उपकरण का उपयोग किया जाता है। प्रतिरोपण के बाद 10वें और 20वें दिन में वीडर का इस्तेमाल किया जाना चाहिए। आगे की निराई फसल के गुच्छे बनने के चरण तक 10–15 दिन के अंतराल पर की जानी चाहिए।

जिन इलाकों में एस.आर.आई. विधि अपनाई जाती है, वहां चावल के उत्पादन में 25–50 प्रतिशत वृद्धि हुई है और जल का उपयोग 40 प्रतिशत से अधिक घटा है। अनुसंधान से पता चला है कि एस.आर.आई. पद्धति की फसलें कीड़ों एवं बीमारियों की अधिक प्रतिरोधी होती है और सूखे, तूफान, गरम थपेड़ों या शीत लहरों जैसी प्रतिकूल जलवायु परिस्थितियों को बेहतर ढंग से सहन करती है। फसल चक्र की अवधि भी घटने के साथ अधिक उपज मिलती है। धान पैदावार में इतना अधिक सुधार आता है कि इस पद्धति को अब गेहूं और अन्य अनाजों के उत्पादन में बढ़ावा दिया जा रहा है।

चावल सघनीकरण प्रणाली, स्रोत : System of Rice Intensification: Weeding method
http://upload.wikimedia.org/wikipedia/commons/b/b4/Seed_bomb_aka_Seed_ball_(Guerilla_gardening).jpg

[27] Ibid.

प्राकृतिक खेती

प्राकृतिक खेती, खेती का सिर्फ एक तरीका नहीं, बल्कि दर्शन एवं जीवन का एक तरीका भी है। यह खेती के प्रति एक पर्यावरण–हितैषी दृष्टिकोण है, जो जीवन के सभी रूपों का आदर करता है। प्राकृतिक खेती में भूमि की जुताई न करने पर जोर दिया जाता है और शाकनाशकों (हरबिसाइड्स), कीटनाशकों, रासायनिक उर्वरकों या किसी भी कृत्रिम तापन (हीटिंग) का इस्तेमाल नहीं किया जाता। यह खेती का एक ऐसा रूप है, जो पृथ्वी को बिल्कुल प्रदूषित नहीं करता है।

प्राकृतिक खेती, खेती का एक टिकाऊ तरीका है, जो प्राकृतिक सामग्रियों से बनी चीजों पर आश्रित रहता है और प्रकृति के कानून का पालन करता है। यह जीवन के सभी रूपों का आदर करता है और नुकसानदायक रासायनिक उर्वरकों, कीटनाशकों और शाकनाशकों के इस्तेमाल के बिना मिट्टी को बेहतर बनाता है। यह मशीनों और पेट्रोलियम पदार्थों पर आश्रित नहीं है, पर मिट्टी और जल निकायों को साफ करने के लिए अपनाया जाता है।

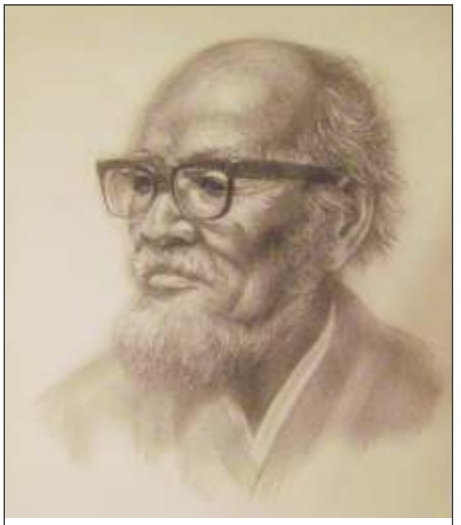

चित्र–8 मासानोबु कुकुओका। साभार फोटो : https://lahuellagallery.files.wordpress.com/2013/05/masanobu-fukuoka3.jpg

प्राकृतिक खेती का लक्ष्य ''कुछ नहीं करना'' है। ''कुछ नहीं करना'' की व्याख्या कोई कार्य न करने के रूप में न की जाए, बल्कि इसका मतलब प्रकृति को अपना काम करने देना और मनुष्य की अनावश्यक दखलंदाजी से परहेज रखना है। जापानी किसान मासानोबु फुकुओका ''कोई जुताई नहीं, कोई शाकनाशक नहीं'', वाले खेती के तरीके के एक मुख्य पैरोकार थे।

प्राकृतिक खेती के तौर तरीके अपनाने से छोटे एवं सीमांत किसान उन बहुराष्ट्रीय कंपनियों के शोषण का शिकार नहीं बनते, जो अक्सर अपने बीजों, उर्वरकों और कीटनाशकों के बहुत ऊंचे दाम रखती हैं। अपने सीधे–सादे तरीकों द्वारा प्राकृतिक खेती फसलों की पैदावार की लागत में भारी कमी ला सकती है। लागत को एकदम न्यूनतम रख कर किसान खेती के एक बेहतर और अधिक टिकाऊ रूप को सुनिश्चित करने के साथ–साथ अच्छा–खासा मुनाफा कमा सकते हैं।

प्राकृतिक खेती के तरीके

फुकुओका की प्राकृतिक खेती चार प्रमुख सिद्धांतों पर आधारित है :

1. कोई जुताई नहीं, 2. कोई कीटनाशक नहीं, 3. कोई उर्वरक नहीं, और 4. कोई निराई नहीं।[28]

[28] "Natural Farming Technique of Masanobu Fukuoka", Garden Food.org, retrieved from: http://www.gardenfood.org/2012/10/natural-farming-technique-of-masanobu.html?view=classic

कोई जुताई नहीं : प्राकृतिक खेती में भूमि पर जुताई नहीं की जाती है, पर उसके बजाए केंचुओं, लघुजीवों और अन्य छोटे जानवरों का उपयोग किया जाता है, जो प्राकृतिक रूप से पृथ्वी की जुताई करते हैं। यह पाया गया है कि केंचुए 7 मीटर तक की गहराई तक मिट्टी को खोद सकते हैं। वे अपनी मल से मिट्टी को उपजाऊ भी बनाते हैं, जो मशीनों द्वारा भूमि की जुताई से एक बेहतर तरीका है।

फुकुओका का मानना था कि जुताई से मिट्टी की कुछ प्रमुख खासियतें नष्ट हो जाती हैं। जब कोई किसान खेत में जुताई करता है तो उससे मिट्टी की जल चूषण क्षमता गड़बड़ा जाती है, नमी धारण क्षमता में बदलाव आता है और पोषक तत्वों का प्रवाह अस्त–व्यस्त हो जाता है। भूमि पर जुताई से मिट्टी में ऑक्सीजन का प्रवाह बढ़ता है, जिससे प्राकृतिक विघटन प्रक्रिया में असंतुलन पैदा होता है, अन्यथा जो संतुलित रूप से होता है। प्राकृतिक खेती में सूर्य की रोशनी, जल एवं मिट्टी के संसाधनों का उपयोग होता है, जो एक गतिशील एवं अधिक संतुलित खाद्य उत्पादन प्रणाली से मेल खाता है। इसमें मिट्टी में मौजूद लघुजीवों का असरदार तरीके से उपयोग होता है।

कोई कीटनाशक नहीं : प्राकृतिक खेती में कीटनाशकों का इस्तेमाल नहीं किया जाता। खेती में कीटनाशकों के उपयोग से कीट तो मरते ही हैं, मगर साथ में उनके रासायनिक कण मिट्टी में रह जाते हैं और वे फसल में प्रवेश कर जाते हैं। मनुष्यों, पक्षियों और पशुओं द्वारा इन फसलों को खाने से गंभीर हानि हो सकती है। मिट्टी में कीटनाशक के प्रवेश से वे भूमिगत जल, नदियों, झीलों और समुद्रों को दूषित करते हैं। ऐसे कई पौधे हैं, जो शत्रु–कीड़ों एवं हानिकारक कीटों से निपट सकते हैं। भारत के किसान कड़वे पौधों, जैसे– नीम के बीजों, नीम की पत्तियों, गाय के गोबर और अन्य सामग्रियों से पूरी तरह परिचित हैं, जो कीड़ों और हानिकारक कीटों से असरदार ढंग से निपट सकते हैं।

कोई शाकनाशक नहीं : प्राकृतिक खेती में शाकनाशकों (हरबिसाइड्स) का इस्तेमाल नहीं किया जाता है क्योंकि शाकनाशक खरपतवार के साथ–साथ मिट्टी में जीने वाले अनेक उपयोगी लघुजीवों को मार देते हैं। दरअसल, प्राकृतिक खेती में खरपतवार का मल्च (पत्ते–पत्तियां बिठाने) के रूप में उपयोग किया जाता है, जिससे बिना किसी हानिकारक प्रभाव के खरपतवार पर नियंत्रण होता है।

कोई रासायनिक उर्वरक नहीं : पौधे में रासायनिक उर्वरक मिलने से उनकी मिट्टी से पोषक तत्व पाने की प्राकृतिक क्षमता कम होती है। इसलिए, प्राकृतिक खेती में किसी भी रासायनिक उर्वरक का उपयोग नहीं किया जाता। इसमें पौधों के विकास के लिए प्राकृतिक स्रोतों से नाइट्रोजन, फोस्फोरस, पोटेशियम, केल्शियम और अन्य आवश्यक तत्व प्राप्त किए जाते हैं। मछली का एमिनो एसिड नाइट्रोजन देता है, अंडे के खोल केल्शियम देते हैं और जानवरों की हड्डियां फोस्फोरिक एसिड का एक स्रोत है। प्राकृतिक खेती में ये सभी लागत की चीजें सस्ती और अत्यंत असरदार होती हैं।

कोई प्रदूषण नहीं : प्राकृतिक खेती वायु एवं जल को प्रदूषित नहीं करती। इसमें किसी भी मशीन का इस्तेमाल नहीं होता। औद्योगिक तरीकों की खेती ने हमारी मिट्टी को नष्ट और जल स्रोत को दूषित किया है। अगर हम रासायनिक खाद और कीटनाशकों का इस्तेमाल न करें तो खेत की मिट्टी में कोई प्रदूषण नहीं हो सकता। प्राकृतिक खेती में कोई वायु या ध्वनि प्रदूषण नहीं होता।

कोई कृत्रिम तापन (हीटिंग) नहीं : प्राकृतिक खेती में किसी भी कृत्रिम तापन या रोशनी का इस्तेमाल नहीं किया जाता। इसके बजाए, इसमें प्राकृतिक सूर्य की रोशनी का उपयोग किया जाता है। किसान जीवाश्म ईंधनों (फोसिल फ्यूल्स) और बिजली से परहेज कर बहुत–सारी धनराशि की बचत कर सकते हैं। प्राकृतिक खेती में मनुष्य के न्यूनतम हस्तक्षेप के साथ प्रकृति को अपना काम करने दिया जाता है।

बीजों के संरक्षण का महत्व

प्राकृतिक खेती एवं बागवानी में बीजों के संरक्षण का पारम्परिक तरीका साल–दर–साल फसलों के रखरखाव का एक प्रमुख पहलू है। भारत के किसानों ने ऐतिहासिक रूप से खेती के अगले सीजन के लिए बीज बचाए हैं। पिछले कुछ सालों में यह तरीका बदला है क्योंकि बहुराष्ट्रीय कंपनियों ने बाजार में सभी प्रकार के संकर बीजों एवं जेनेटिक रूप से परिवर्द्धित बीजों की भरमार कर दी है।

फुकुओका ने मौलिक पौधे की पैतृक विशेषताओं के संरक्षण के लिए पारम्परिक बीजों की रक्षा की जरूरत पर जोर दिया है। उन्होंने अपने खेत पर मिट्टी के गोलों (बॉल्स) में बीजों को रखने की प्राचीन तकनीक को पुनर्जीवित किया और उसे लोकप्रिय बनाया। आज मिट्टी के गोलों में बीज का तरीका व्यापक रूप से अपनाया जाता है।

मिट्टी के गोलों में बीज[29]

मिट्टी के गोलों में बीज रखना एक प्राचीन प्रौद्योगिकी है। इसमें फसल के अगले सीजन के लिए खाद मिली मिट्टी या कम्पोस्ट में बीज रख कर और इनके छोटे गोले बनाए जाते हैं। इसके बाद कुछ दिनों तक इन गोलों को सूरज की धूप में सुखाया और नमी–मुक्त इलाके में अगले सीजन के आने तक रखा जाता है। फुकुओका ने अपने प्राकृतिक खेत पर इस तकनीक को लोकप्रिय बनाया। उन्होंने इन्हें ''मिट्टी की लोइयां'' (Tsuchidango) का नाम दिया और ये फसल पैदावार में वृद्धि के उनके व्यावहारिक अनुभव के प्रमुख अंग थे। बिना जुताई और बुआई के अनाज उत्पादन के लिए मिट्टी के गोलों में बीज का असरदार तरीके से उपयोग किया जा सकता है। सरकारें उजड़े वनों और क्षरित इलाकों में पुनर्बहाली के लिए इस पद्धति का उपयोग कर सकती हैं।

चित्र–9 बीज का गोला
स्रोत : http://nature1st.net/ync/wp-content/uploads/2014/04/seedbomb.jpg

मिट्टी में बीज के गोलों का निर्माण

मिट्टी में बीज डाल कर गोले बनाना बहुत आसान है। सबसे पहले संरक्षित किए जाने वाले बीज को मिट्टी और कम्पोस्ट, खाद आदि के साथ मिलाया जाता है। अच्छी तरह कटे धान के भूसे (स्ट्रा)

[29] Coyne, Kelly. Knutzen, Erik. "How to Make Seed Balls" in Mother Earth Living, online at: http://www.motherearthliving.com/gardening/how-to-make-seed-balls.aspx#axzz3NCHVXtRV

का उपयोग बीज के गोले को खिंचावयुक्त ताकत देने के लिए किया जा सकता है। इस मिश्रण को थोड़ा गीला कर, ढेलों या गोलों के रूप में बना कर सुखाया जाता है। उसके बाद इन बीज के गोलों को जलवायु एवं बारिश के आधार पर साल के उपयुक्त समय पर खेतों में डाल दिया जाता है।

मिट्टी में बीज के गोलों के घटक (इनग्रेडिएन्ट्स)

1. सूखी मिट्टी के पांच भाग,
2. किसी भी किस्म के जैविक कम्पोस्ट के 3 सूखे भाग और अच्छी तरह कटी सूखी घास या भूसी, और
3. बीज।

बीज के गोले तैयार करने का तरीका

1. मिट्टी और कम्पोस्ट को मिलाएं,
2. उसे लोई जैसा बनाने के लिए सिर्फ आवश्यक पानी मिलाएं,
3. कंचा के आकार का गोला बनाने के लिए सिर्फ आवश्यक मिट्टी लें।
4. मध्य में बीज चिपकाएं और उसके चारों ओर मिट्टी लपेटें,
5. कुछ दिनों तक सुखने के लिए छोड़ें, और
6. सीजन आने पर इन गोलों को खेत के प्रति वर्गगज में लगभग 10 गोले वितरित करें।

भारत में किसान इन देसी तकनीकों के जरिए भी अपने बीज बचा रहे हैं। बीज का संरक्षण करने के लिए गाय के गोबर, गाय के मूत्र, मिट्टी और चूने के साथ बीजों के उपचार के पारम्परिक तरीकों का व्यापक इस्तेमाल भी किया जाता है। बीजों पर गाय के गोबर की परत चढ़ाने से उनकी बीमारियों एवं शत्रु–कीटों से रक्षा होती है।

प्राकृतिक खेती में लागत : पोषक चक्र सिद्धांत[30]

अधिकतर किसान इस धारणा से भ्रमित होते हैं कि ''अधिक बेहतर होता है'' यानी अधिक उर्वरकों के डालने पर बेहतर फसल होगी। यह विचार किसानों और फसलों दोनों के लिए घातक हो सकता है। पोषक चक्र और उर्वरकों की बड़ी मात्रा से किसी भी फसल के उगने की क्रिया निर्धारित नहीं होती है। उपयुक्त समय पर फसल को सही तरह के पोषक तत्व उपलब्ध कराने पर ही अधिकतम फसल की पैदावार की जा सकती है। पौधे के जीवन चक्र के चरण के अनुसार सही किस्म के पोषक तत्व भी बदलते रहते हैं।

कुछ लोगों का मानना है कि प्राकृतिक खेती पिछड़ी हुई है, जबकि हकीकत में यह खेती का अत्यंत वैज्ञानिक रूप है, जिसमें प्रकृति को अपना काम करने दिया जाता है। प्रकृति सही परिस्थितियों में सही ढंग से काम करती है।

[30] Kyu, H. Cho. "Nutritive Cycle Theory", Natural Farming Philosophy. Retrieved from Thai Natural Farming, online at: http://www.thainaturalfarming.com/index.php?lay=show&ac=article&Id=38076

पौधे अपने जीवन चक्र में कई बदलावों के चरण से गुजरते (जैसे– वे उगते हैं, फूल आते हैं, फल आते हैं और मिट जाते हैं) हैं, जिसे मोटे तौर पर दो विकास चरणों में बांटा जा सकता है : वानस्पतिक और पुनरुत्पादक। वानस्पतिक चरण में पौधे कार्बोहाइड्रेट्स को जैविक नाइट्रोजन में तब्दील करते हैं। पुनरुत्पादन चरण में पौधे अपने फलों और अन्य अंगों में कार्बोहाइड्रेट्स का भंडारण करते हैं। पोषक चक्र सिद्धांत किसान को फसल की विभिन्न पोषक जरुरतों को समझने में सक्षम बनाता है। इसके अनुसार किसान मिट्टी को उपयुक्त मात्रा में पोषक तत्व दे सकता है। प्राकृतिक खेती सही चरण में और सही मात्रा में सही सामग्री के सही उपयोग पर जोर देती है।

प्राकृतिक लागत की चीजें

प्राकृतिक खेती में रसायनों, उर्वरकों, कीटनाशकों या हारमोन्स जैसी कृत्रिम चीजों की जरूरत नहीं पड़ती क्योंकि ये विनाशकारी हो सकती हैं। इसके बजाए, यह मिट्टी में प्राकृतिक जैव–गतिविधि और बीमारियों से प्राकृतिक रक्षा को बढ़ावा देती है।

सर्वाधिक महत्वपूर्ण पोषक तत्व (जैसे– नाइट्रोजन, फोस्फोरस, पोटाश, लौह, सल्फर, केल्शियम) पहले से मिट्टी में मौजूद होते हैं, पर पौधे को आसानी से उपलब्ध नहीं हो सकते हैं। प्राकृतिक खेती सुनिश्चित करती है कि प्राकृतिक तरीके से समुचित परिस्थितियां पैदा कर ये पोषक तत्व पौधे को उपलब्ध कराए जाएं। उदाहरणार्थ, मिट्टी में प्राकृतिक जैव–गतिविधि शुरू करने के लिए लघु जीव (बैक्टीरिया एवं माइक्रोब) और केंचुए प्रविष्ट होते हैं। गाय का कम्पोस्टेड गोबर या अन्य पशुओं का गोबर असरदार तरीके से मिट्टी में लघु जीव प्रविष्ट करता है और जैव–प्रक्रिया शुरू होती है।

प्राकृतिक खेती करने वाले भारतीय किसानों ने कुछ प्राकृतिक उत्प्रेरिकी कर्ताओं (नेचुरल कैटेलिक एजेन्ट्स) के जरिए इस तकनीक को उन्नत बनाया है, जो मिट्टी में गले–सड़े वनस्पति के उपयोग को बढ़ावा देता है। उदाहरणार्थ, जीवामृता (जल, गाय के गोबर, गाय के मूत्र, गुड़, दलहन के आटे और मिट्टी का बना एक तरल मिश्रण) एक अत्यंत असरदार उत्प्रेरिकी कारक है, जो बड़ी मात्रा में लघु जीवों को अपने अंदर समाए हुए है। इसका मिट्टी पर इस्तेमाल करने पर मिट्टी के स्वस्थ्य होने की प्रक्रिया शुरू हो जाती है और मिट्टी के उपजाऊ बनने की प्रक्रिया भी शुरू होती है।

बहु–फसलीय पद्धति से उत्पादन की प्रणालियां

अलग–अलग जलवायु एवं मिट्टी, भिन्न प्रकार की जमीनों, मौसम के विभिन्न क्रमों और अनेक प्रकार के उपलब्ध भिन्न–भिन्न संसाधनों के चलते दुनिया भर में खेती के बहुत सारे तरीके अपनाए जाते हैं। देसी ज्ञान एवं सीमित संसाधनों के साथ पारम्परिक खेती के तरीके दुनिया भर में लोकप्रिय हो रहे हैं क्योंकि ये तरीके प्रकृति एवं मनुष्यों को हानि पहुंचाए बिना जैव–विविधता और मिट्टी में पोषक तत्व बनाए रखने में सक्षम हैं।

बहु–फसलीय कृषि पद्धति (मल्टीपल क्रॉपिंग) खेती का एक पारम्परिक एवं सघन तरीका है, जो न सिर्फ विकासशील देशों, बल्कि विकसित देशों में भी व्यापक स्वीकार्यता प्राप्त कर रहा है। भारत में किसान कई पीढ़ियों से दाल–प्रजातियों (लेग्यूम्स) एवं गैर–दाल प्रजातियों (नोन लेग्यूम्स) पर आधारित मिश्रित खेती करते रहे हैं। चीन, इंडोनेशिया, फिलीपीन्स और अफ्रीका के अनेक देशों के किसानों ने भी इस तरीके को अपनाया है। इन सभी देशों में भूमि के अभाव और खाद्यानों की भारी मांग के मद्देनजर खेती की उत्पादकता में वृद्धि के लिए विविध बहु–फसलीय उत्पादन के नए तौर तरीकों को अपनाया गया है।

इस अध्याय का मुख्य उद्देश्य छोटी जोत के किसानों को बहु–फसलीय पैदावार के क्रमों को अपनाने में मदद करना है ताकि वे खेती की उत्पादकता बढ़ा सकें और बेहतर खाद्य सुरक्षा एवं उच्च आय सुनिश्चित कर सकें।

बहु–फसलीय पद्धति का क्या मतलब है?

बहु–फसलीय पद्धति को एक कैलेन्डर वर्ष के दौरान एक ही खेत पर एक से अधिक फसलें उगाने के रूप में परिभाषित किया गया है। इस प्राचीन तरीके का उन क्षेत्रों में इस्तेमाल होता रहा है, जहां अधिक बारिश, अधिक तापमान और फसल उगाने के लिए लंबी ऋतु उपलब्ध हैं, जो फसलों को लगातार उगाने के अनुकूल माहौल प्रदान करते हैं। वार्षिक खाद्यान्न फसलों, चारा, सब्जियों, फलों और बारहमासी फसलों के लिए बहु–फसलीय उत्पादन किया जा सकता है।[31]

यह तरीका किसानों को लगातार खाद्य आपूर्ति करने के साथ–साथ पारिस्थितिकीय टिकाऊपन सुनिश्चित करता है। यह तरीका बेहतर खाद्य सुरक्षा देता है, गरीब किसानों की पोषण–जरूरतों की पूर्ति करता है और साथ ही किसानों को अपनी भूमि की उत्पादकता बढ़ाने में मदद करता है।

फसलों पर कीटों के हमले हो सकते हैं, जिससे फसल की उपज में नुकसान या कमी हो सकती है। बहु–फसलीय पद्धति कीट जैसे जैव–एजेंट्स के चलते फसल की नाकामी को न्यूनतम करती है। खेती की इस पद्धति में जैविक नियंत्रण के जरिए एक फसल दूसरी फसल का कीटों से बचाव कर सकती है।

[31] Gliessman, R. Stephen. Dr. "Multiple cropping Systems: a Basis for Developing an Alternative Agriculture", Environmental Studies, University of California. Retrieved from Princeton University Library archive. Online at :www.princeton.edu/~ota/disk2/1985/8512/851207.PDF

उदाहरणार्थ, राई को गेहूं के साथ उगाया जाता है, जिससे एफिड (सफेद मक्खी जैसे कीट) गेहूं से राई पर चले जाते हैं। इसी प्रकार, भिंडी को कपास के साथ उगाने से कपास के कीट भिन्डी पर चले जाते हैं।

बहु–फसलीय पद्धति को अपनाने के कारण[32]

- जनसंख्या में वृद्धि से खाद्य पदार्थों की मांग बढ़ती है और जीवन –निर्वाही खेती के लिए खेती–योग्य भूमि की कमी के चलते किसान कृषि उत्पादन में वृद्धि के नए तरीके ढूंढ़ने के प्रयास करते हैं ताकि बढ़ती मांग पूरी की जा सके।
- हरित क्रांति से खेती के पारम्परिक तरीकों में काफी गिरावट आई है। अधिक पैदावार के सपने से आकर्षित होकर गरीब किसानों ने पारम्परिक तरीकों को त्याग दिया हैं और औद्योगिक तरीकों की खेती यानी एकल फसल पद्धति (मोनोकल्चर) को अपनाया है।
- हरित क्रांति के दौरान अपनाई गई प्रौद्योगिकी और औद्योगिक तरीकों की खेती का मानव स्वास्थ्य एवं पर्यावरण पर बहुत प्रतिकूल प्रभाव पड़ा है।
- आनुवंशिक रूप से संशोधित फसलों के प्रसार से भी गरीबों की दशा खराब हुई है। महाराष्ट्र के कपास–उत्पादन क्षेत्र में पिछले अनेक दशकों के दौरान आत्महत्या करने वाले किसानों की संख्या में भारी वृद्धि हुई है। भारत में आनुवंशिक रूप से संशोधित फसलों के प्रसार के खिलाफ भारी विरोध और आंदोलन होता रहा है।
- पौधों की भिन्न–भिन्न आदतें और पोषण–जरूरतें होती हैं। पौधे विभिन्न क्रमों में सौर ऊर्जा भी सोखते हैं। कुछ पौधों को सूर्य के प्रकाश की जरूरत कम होती है, जबकि कुछ अन्य पौधे दिन भर सूर्य के प्रकाश का आनंद लेते हैं। यह पाया गया है कि जब विभिन्न किस्मों के पौधे एक साथ लगाए जाते हैं, तब सूर्य के प्रकाश का अधिकतम उपयोग होता है। छाया और खुलेपन का संयोजन पौधों के विकास में मदद करता होता है।
- पौधों में पोषक तत्वों की विभिन्न ग्रहण क्षमता होती है। कुछ पौधे एक बड़ी मात्रा में किसी पोषक तत्व का उपभोग करते हैं और अन्य पोषक तत्वों को मिट्टी में अनछुआ छोड़ देते हैं। बहु–फसलीय पद्धति मिट्टी के पोषक तत्वों और नाइट्रोजन के बेहतर उपयोग में सक्षम होती है। एक साथ विभिन्न फसलें उगाने पर बेहतर उपज होती है। बेहतर और नियमित उपज किसानों को खाद्य विविधता एवं खाद्य सुरक्षा सुनिश्चित करती है और पोषण संबंधी जरूरतों का ख्याल भी रखती है।
- बहु–फसलीय पद्धति मिट्टी में नमी बरकरार रखते हुए जल वाष्पीकरण को रोकने में मदद करती है। उगाने के सीजन के दौरान पौधे मिट्टी को ढकते हैं, जिससे मिट्टी की अधिक रक्षा होती है। यह वर्षा एवं हवा के कारण क्षरण में कमी लाता है।
- एकल फसल पद्धति से उत्पादन (मोनो–क्रॉपिंग) की तुलना में बहु–फसलीय पद्धति से उत्पादन की प्रणालियां कीड़ों एवं कीटों को बेहतर ढंग से नियंत्रित और प्रबंधित करती हैं।

[32] "Benefits of multiple cropping", retrieved from: http://www.dawn.com/news/968385/benefits-of-multiple-cropping

- बहु–फसलीय पद्धति से खरपतवार को पनपने के लिए कम जगह मिलती है और एलीलोकेमिकल्स (allelochemicals) (शाकाहारी जीवों या प्रतिस्पर्धी पौधों से रक्षा के लिए किसी पौधे द्वारा पैदा किए गए विषैले रसायन) का रिसाव उनके विकास में रूकावट पैदा करता है।[33] खरपतवार फसल के छिपे दुश्मन होते हैं और संसाधनों को भारी हानि पहुंचाते हैं। इस प्रकार, बहु–फसलीय पद्धति के जरिए खरपतवार पर नियंत्रण से खाद्य उत्पादन में वृद्धि होती है।

बहु–फसलीय पद्धति के फायदे[34]

- भूमि और सौर ऊर्जा का बेहतर उपयोग,
- विभिन्न फसलों की पोषण संबंधी भिन्न जरूरतों का पूरा उपयोग करते हुए मिट्टी में पोषक तत्वों का बेहतर प्रबंधन,
- जलवायु की उग्र स्थितियों का कम असर पड़ना,
- जल वाष्पीकरण से बचाव और मिट्टी में नमी बनाए रखना,
- संरक्षी फसलों (कवर क्रॉप्स) के जरिए मिट्टी के कटाव से बचाव,
- मिट्टी की संरचना और जैविक तत्वों में सुधार,
- खरपतवारों एवं कीटों का बेहतर नियंत्रण, और
- उत्पादकता और खाद्य सुरक्षा में वृद्धि।

बहु–फसलीय पद्धति से उत्पादन को फसल उगाने के तीन क्रमों में बांटा जा सकता है, जिसको दुनिया भर में आम तौर पर अपनाया गया है :

मुख्य फसल के बीच अन्य फसलों का उत्पादन : यह एक ही समय में किसी विशिष्ट पंक्ति व्यवस्था के बिना दो या उससे अधिक फसलें उगाने का तरीका है। भारत के कई राज्यों में छोटे किसान अपने निर्वाह के लिए मुख्य फसल के बीच अन्य फसलें उगाने का तरीका अपनाते हैं।

मिश्रित बीच की फसलों का उत्पादन : यह किसी पंक्ति या पट्टी व्यवस्था के बिना दो या उससे अधिक फसलें उगाने का तरीका है।

मिश्रित फसलों का उत्पादन : इस तरीके में एक ही खेत पर एक साथ या विभिन्न समय में कई किस्मों की फसलें उगाई जाती है। मिश्रित फसलों का उत्पादन प्रकाश–संश्लेषण को बढ़ावा देता है और पौधों के बीच पोषक तत्वों के लिए प्रतिस्पर्धा टालता है क्योंकि भिन्न–भिन्न पौधे मिट्टी की भिन्न–भिन्न गहराई से पोषक तत्व प्राप्त करते हैं।[35]

---

[33] Retrieved from: http://www.merriam-webster.com/dictionary/allelochemical

[34] Gliessman, R. Stephen. Dr. "Multiple cropping Systems: a Basis for Developing an Alternative Agriculture", Environmental Studies, University of California. Retrieved from Princeton University Library archive. Online at :https://www.princeton.edu/~ ota/disk2/1985/8512/851207.PDF

[35] "Technical Brochure on Organic Farming System - An Integrated Approach for Adoption", Ministry of Agriculture, New Delhi. Retrieved from: http://www.midh.gov.in/technology/Organic_Management_NHM.pdf

प्रत्येक सीजन में फसल क्षेत्र के न्यूनतम 40 प्रतिशत हिस्से में दाल प्रजाति–आधारित फसल उगाने का ध्यान रखना चाहिए। दाल प्रजातियां वायुमंडलीय नाइट्रोजन को फिक्स करती हैं और उसे संगी या बाद की फसलों को प्रदान करती है। बहु–फसलीय पद्धति का अधिकतम लाभ पाने के लिए पूरे खते में सभी समय में फसलों की कम से कम 8–10 किस्में उगाई जाए। छोटे खेत के मामले में फसल की 2–4 किस्में हों, जिसमें एक दाल प्रजाति–आधारित फसल जरूर हो। यदि किसी खेत पर एक ही फसल उगाई जाए तो निकटवर्ती खेतों पर भिन्न–भिन्न फसलें होनी चाहिए।[36]

विभिन्न दाल प्रजातियों और सब्जियों की फसलों के एक उपयुक्त मिश्रण के साथ गन्ना जैसी उच्च पोषक तत्व–आधारित फसल को भी उगाया जा सकता है, जिससे इष्टतम उत्पादकता प्राप्त हो सकती है। मिश्रित फसलों के खेत में आम तौर पर शत्रु–कीटों के नियंत्रण के लिए गेंदे के फूल के पौधे उगाए जाते हैं।

आंध्र प्रदेश में सूखे और अतिवृष्टि के दौरान भी मूंगफली की अकेली फसल की तुलना में निम्नलिखित बीच की फसलों के उत्पादन के तरीके अधिक फायदेमंद पाए गए थे :[37]

मूंगफली + लाल चना (अरहर)	7 : 1 अनुपात
मूंगफली + अरंडी	7 : 1 अनुपात
मूंगफली + ज्वार	6 : 2 अनुपात
मूंगफली + बाजरा	6 : 2 अनुपात

(7 : 1 अनुपात मूंगफली की 7 पंक्तियों और अन्य फसल की एक पंक्ति इंगित करता है)

किसानों को मवेशियों और दूध देने वाले जानवरों की चारा संबंधी जरूरतों की पूर्ति के लिए मूंगफली के साथ ज्वार की फसल उगाने की प्रणाली काफी प्रचलित मानी जाती है।[38]

अनेक राज्यों में किसानों द्वारा व्यापक रूप से अपनाई जाने वाली बहु–फसलीय पद्धति की फसलों के मेल (क्रॉप कॉम्बिनेशन) का अन्य तरीका निम्नलिखित हैं :

राज्य	**फसल संयोजन**
महाराष्ट्र	मूंगफली + लाल चना या अरहर (6 : 1 / 4 : 1)
	मूंगफली + सोयाबीन (6 : 2)
	मूंगफली + सूरजमुखी (6 : 2 / 3 : 1)
गुजरात	मूंगफली + अरंडी (9 : 2 / 3 : 1)
	मूंगफली + सूरजमुखी (3 : 1 / 2 : 1)

[36] Yadav, A. K. "Organic Agriculture, (Concept, Scenario, Principals and Practices)", National Centre of Organic Farming, Department of Agriculture and Cooperation, Ministry of Agriculture, Govt. of India. Retrieved from: http://ncof.dacnet.nic.in/Training_manuals/Training_manuals_in_English/Organic_Agriculture_in_India.pdf

[37] "Groundnut Production Practices new - Intercropping and Mixed cropping practices", Intercropping Cropping system. Retrieved from: http://agropedia.iitk.ac.in/content/groundnut-production-practices-new-intercropping-and-mixed-cropping-practices

[38] Ibid.

तमिलनाडु	मूंगफली + बंगाल चना (4 : 1) मूंगफली + बाजरा (4 : 1) मूंगफली + हरा चना (2 : 1)
कर्नाटक	मूंगफली + मिर्ची (2 : 2) मूंगफली + सूरजमुखी (3 : 1) मूंगफली + लाल चना या अरहर (4 : 1)

देश के कई अन्य भागों में अनाजों, दाल प्रजातियों और नकदी फसलों की विविध फसल उगाने के विभिन्न अन्य मेल में निम्नलिखित भी शामिल हैं :[39]

जम्मू क्षेत्र	:	चावल या गेहूं और ज्वार
राजस्थान	:	मूंगफली और गेहूं
हरियाणा का पश्चिमी भाग	:	कपास और गेहूं
मध्य प्रदेश	:	धान और गेहूं
सौराष्ट्र (पश्चिमी गुजरात)	:	कपास और मूंगफली
महाराष्ट्र का विदर्भ क्षेत्र	:	कपास और मूंगफली
दक्षिण कर्नाटक	:	कपास और मूंगफली
तमिलनाडु का तंजावुर क्षेत्र	:	धान और काला चना / तिल या चावल / मूंगफली

जलवायु और मिट्टी की स्थितियों के आधार पर देश भर में अनाजों या दालों और फलियों के कई अन्य मेल भी अपनाए जाते हैं।

अनुपद फसल उत्पादन (रिले क्रॉपिंग) : अनुपद फसल उत्पादन प्रणाली में पहली फसल की कटाई से पहले जब इस फसल का फूल पक चुका हो या वह प्रौढ़ हो चुकी है, एक दूसरी फसल बोई जाती है। अनुपद फसल उत्पादन से दो या अधिक फसलों के बीच समय का अंतराल घटता है। इस तरह की खेती में आम तौर पर छाया–सहिष्णु फसल की किस्में उगाई जाती हैं। इस तरीके में अक्सर कैसावा, कॉटन स्वीट आलू, मसूर और गेहूं की फसलें उगाई जाती हैं।[40]

बारी–बारी से फसल का उत्पादन (क्रॉप रोटेशन) या अनुक्रमिक फसल उत्पादन पद्धति : यह एक अन्य तरीका है, जिसमें खेत की उसी भूमि पर एक के बाद दो या अधिक फसलें उगाई जाती हैं। बारी–बारी से फसल उत्पादन से अत्यंत असरदार तरीके से शत्रु–कीटों की रोकथाम होती है क्योंकि उगाए जाने वाले नए पौधे का आदी होने में इन कीटों को समय लगता है। एक गैर– दाल प्रजाति आधारित फसल के बाद दाल–प्रजातियां उगाने से मिट्टी में नाइट्रोजन को फिक्स करने में मदद मिलती है।[41]

---

[39] Pujari, Saritha. "Cropping System in India: Biological Efficiency and Land Use Efficiency!" Retrieved from: http://www.yourarticlelibrary.com/crops/useful-notes-on-cropping-system-in-india-1185-words/11457/

[40] Gallaher, N. Raymond."Multiple cropping Systems", Management of Agricultural Forestry and Fisheries Enterprises, Vol. 1. Institute of Food and Agricultural Science, University of Florida. Retrieved from: http://www.eolss.net/Sample-Chapters/C10/E5-15-02-04.pdf

[41] Ibid.

बारी–बारी से फसल की उत्पादन पद्धति जैविक खेती के तरीकों की रीढ़ के समान है। मिट्टी को स्वस्थ रखना और सूक्ष्मजीवी प्रणालियों को अपना काम करने देना अत्यंत जरूरी है। बारी–बारी से फसल उत्पादन खेत की एक ही भूमि पर विभिन्न फसलों का एक सिलसिला है। इस पद्धति में 3–4 साल की एक रोटेशन योजना अपनाई जानी चाहिए। उच्च पोषक तत्व मांग–आधारित सभी फसलों से पहले और बाद में फलियां–आधारित फसलों को लगाना चाहिए। अन्य तरीका शाकनाशक–मेजबान और गैर–शाकनाशक–मेजबान फसलों का रोटेशन चक्र है, जिससे मिट्टी–जनित बीमारियों, शाकनाशकों एवं खरपतवार पर नियंत्रण में मदद मिलती है। अनाज और सब्जियों की फसलों में प्रायः फलियों का उपयोग किया जाना चाहिए। हरे खाद वाली फसलों को रोटेशन में शामिल किया जाना चाहिए।

बारी–बारी से फसल उत्पादन (क्रॉप रोटेशन) के फायदे

1. बारी–बारी से फसल उत्पादन पद्धति से खरपतवारों पर नियंत्रण लगता है, विशेषकर संरक्षी फसलों, जो खरपतवारों का विकास नहीं होने देती है।
2. शत्रु–कीटों और बीमारियों पर नियंत्रण : एक के बाद दूसरी फसल उगाने पर शाकनाशक अस्त–व्यस्त हो जाते हैं क्योंकि अन्य फसल के विकास से उनकी खाद्य आपूर्ति में कटौती होती है। उदाहरणार्थ, धान की फसल की कटाई के बाद दाल–प्रजातियों की खेती से धान के तने में लगने वाले कीट (स्टेम बोरर) पर नियंत्रण लगता है।
3. मिट्टी के जैविक तत्वों में सुधार आना : सोयाबीन, अन्य दाल–प्रजातियों, मीठे आलू और सब्जियों की खेती से मिट्टी में पौधे के पर्याप्त अवशिष्ट लौटते है क्योंकि कटाई के बाद उनके पत्ते जमीन पर गिरते हैं या उनके शरीर के हिस्से पड़े रह जाते हैं, जिन्हें जलाया नहीं जाता, जैसा कि गन्ने के मामले में किया जाता है, जिससे मिट्टी के जैविक तत्वों में सुधार आता है।
4. मिट्टी के उपजाऊपन में सुधार आना : लगातार एक ही फसल उगाने से मिट्टी के कुछ पोषक तत्वों में कमी आती है। इसके विपरीत, बारी–बारी से फसल के उत्पादन की पद्धति में एक के बाद दूसरी फसल लगाने से मिट्टी के उपजाऊपन को बढ़ावा मिलता है क्योंकि हर फसल की पोषण संबंधी भिन्न–भिन्न जरूरतें होती हैं।

बहु–फसलीय सब्जी का उत्पादन।
स्रोत : http://upload.wikimedia.org/wikipedia/commons/3/38/Organic-vegetable-cultivation.jpeg

जैविक खेती

भारतीय किसानों ने हरित क्रांति की दस्तक से सैकड़ों साल पहले से जैविक खेती ही करते आए थे, जिसे आम तौर पर जैव–खेती भी कहा जाता है। देश भर में कई आदिवासी समुदाय अभी भी झूम खेती का तरीका अपनाते हैं, जो जैविक खेती जैसा ही है। लगभग पिछले एक दशक से किसान समुदायों, नीति निर्धारकों और वैज्ञानिकों ने अहसास किया है कि हरित क्रांति द्वारा कृषि–रसायनों के अत्यधिक इस्तेमाल को बढ़ावा देने से स्थिति यहां तक आ गई है, जहां इसे सीमित एवं गैर–नवीकरणीय संसाधनों के सहारे चलाया जा रहा है। इस प्रकार, हर कीमत पर जीवन के अस्तित्व की खातिर एक टिकाऊ और प्राकृतिक संतुलन बनाए रखना अत्यंत आवश्यक है। यह जैविक खेती के तौर तरीकों को अपनाने से संभव है।

जैविक खेती क्या है?

जैविक खेती एक तरीका है, जिसमें किसान मिट्टी को जीवंत रखते हुए खेती कर फसलों की पैदावार करते हैं। गाय के गोबर, बकरी के गोबर, भैंस के गोबर, खेत के कचरे, जलीय अपशिष्ट (एक्वेटिक वेस्ट्स) और अन्य सामग्री जैसे जैविक कचरे के उपयोग द्वारा मिट्टी का स्वास्थ्य बरकरार रखा जाता है, जिनमें कुछ लाभदायक सूक्ष्मजीव होते हैं। जैव–उर्वरक फसलों को पोषक तत्व देने में मदद करते हैं– यह तरीका अत्यधिक टिकाऊ, प्रदूषण–मुक्त और पर्यावरण–हितैषी है।[42]

जैविक खेती प्रकृति के खिलाफ नहीं, बल्कि उसके साथ सामंजस्य बिठा कर कार्य करती है। जैविक किसान अपने खेतों को प्रकृति के भरोसे नहीं छोड़ते, बल्कि वे प्रकृति के साथ मिल कर अपने समस्त ज्ञान, तकनीकों और उपलब्ध संसाधनों का उपयोग करते हैं। इसमें प्रकृति और खेती के बीच एक स्वस्थ संतुलन बनाने के लिए पारम्परिक खेती को आधुनिक वैज्ञानिक ज्ञान के साथ जोड़ते हुए खेती की जाती है, जिसमें फसलें एवं जानवर विकसित और फलते–फूलते हैं।

जैविक खेती में रासायनिक उर्वरकों, कीटनाशकों, हारमोन्स या पोषक तत्व–वर्द्धक दवा (फीड एड्डीटिव्स) का इस्तेमाल वर्जित है। इसके बजाए, यह पौधे और मिट्टी की रक्षा के लिए जैविक खाद, हरित खाद, बारी–बारी से फसल के उत्पादन, फसल के अपशिष्ट, मिश्रित फसलों के उत्पादन और जानवरों के खाद पर आश्रित रहती है। इस प्रकार, जैविक खेती पारिस्थितिकी खेती तंत्र के स्वास्थ्य को बढ़ावा देती है, जैव–विविधता की रक्षा करती है और मिट्टी में जैविक गतिविधि बढ़ाती है।

[42] Rana, S. S."Organic Farming", Department of Agronomy, College of Agriculture, CSK Himachal Pradesh Krishi Vishva Vidyalaya, Palampur, 2014, pp 1-73. Retrieved from: http://hillagric.ac.in/edu/coa/agronomy/lect/agron-3610/TeachingManual-Organic-Farming-SSR.pdf

भारत में जैविक खेती

भारत के लगभग सभी राज्यों में जैविक खेती की जाती है। आधिकारिक डाटा देश भर में जैविक खेतों की वृद्धि दर्शाते हैं। 2003–04 में सिर्फ 42,000 हेक्टेयर के प्रमाणित जैविक खेत थे,[43] जिसमें छह साल के दौरान कई गुना वृद्धि हुई है। 2010 के डाटा के अनुसार भारत में जैविक खेती के तहत लगभग 5,28,171 हेक्टेयर भूमि है। इस संख्या में प्रमाणित जैविक खेत और जैविक खेती में तब्दीली की प्रक्रिया के तहत आने वाले क्षेत्र भी शामिल हैं।[44]

भारत में जैविक खेती के प्रकार

भारत के जैविक किसानों को मोटे तौर पर तीन समूहों में बांटा जा सकता है। पहले समूह में बहुत छोटी जोत के किसान आते हैं, जिनके पास जैविक खेती के तरीकों में निवेश के लिए बहुत कम वित्तीय संसाधन हैं। महंगे रासायनिक उर्वरकों एवं कीटनाशकों जैसी चीजों की लागत की बचत के लिए वे जैविक खेती का विकल्प चुनते हैं। दूसरे समूह में वे किसान आते हैं, जिनके पास बेहतर वित्तीय क्षमता है और रासायनिक उर्वरक एवं कीटनाशक–आधारित खेती करते हैं, लेकिन पिछले कुछ समय से जैविक खेती की ओर मुड़ गए हैं। तीसरे समूह में वे औद्योगिक जैविक खेत हैं, जो दुनिया में जैविक खाद्य पदार्थों की आपूर्ति के लिए विशाल मात्रा में उत्पादन करते हैं।

भारत में जैविक खेती करने वाले किसानों के सामने समस्याएं

स्वास्थ्यवर्धक एवं पर्यावरण–हितैषी खाद्य पदार्थों की अधिक मांग से जैविक खेती लोकप्रियता प्राप्त कर रही है। भारी मांग के चलते कृषि व्यवसाय में सक्रिय बड़ी कंपनियां अधिक मुनाफा कमाने के लिए जैविक खेती के व्यवसाय में कूद पड़ी हैं। नतीजतन, छोटे किसान बाजार में बड़ी कृषि व्यवसाय कंपनियों से प्रतिस्पर्धा में अक्षम रहते हैं।

जैविक खेती के लिए छोटे किसानों के सामने अन्य समस्या प्रमाणीकरण की है। प्रमाणित जैविक खाद्य उत्पादों को बाजार में बेहतर दाम मिलते हैं और ज्यादातर उपभोक्ता छोटे उत्पादकों के उत्पादों की तुलना में ब्रांडेड उत्पादों को पसंद करते हैं। जैविक खाद्य उत्पादों का प्रमाणीकरण एक संस्थागत और बोझिल प्रक्रिया है, जो बहुत छोटी जोत वाले छोटे किसानों के लिए महंगी और समय–खाऊ है।

इस अध्याय का उद्देश्य जैविक खेती अपनाने में छोटे एवं सीमांत किसानों की मदद करना है ताकि वे अधिक निवेश किए बिना सुरक्षित खाद्य पदार्थ पैदा करें और प्रमाणीकरण की बोझिल प्रक्रिया से गुजरे बिना सरप्लस (अधिशेष) को निकटस्थ पड़ोसी या निकटवर्ती लघु बाजार में बेच पाएं। इसमें छोटे किसानों में यह जागरूकता फैलाने का प्रयास किया गया है कि किस प्रकार महंगे औद्योगिक उत्पादों पर आश्रित हुए बिना अपने खेत में आसानी से उपलब्ध चीजों का इस्तेमाल किया जाए। जैविक खेती की ओर मुड़ने के इच्छुक कई

[43] "The World of Organic Agriculture in India", retrieved from: http://ncof.dacnet.nic.in/OrganicFarming-AnOverview/TheWorldofOrganicAgricultureinIndia%202010.pdf

[44] P, Ramesh. Panwar, N. R. et al., "Status of Organic Farming in India", Current Science, Vol. 98, No. 9, 10 May, 2010, pp. 1190-94. Retrieved from: http://www.currentscience.ac.in/Downloads/article_id_098_09_1190_1194_0.pdf

किसान उन ताकतों से संघर्ष करते हैं, जो औद्योगिक जैविक उत्पादों, जैसे– जैव–कीटनाशकों और जैव–उर्वरकों को बढ़ावा देते हैं। ये उत्पाद उतने ही महंगे हैं, जितने कि रासायनिक उर्वरक एवं कीटनाशक। इससे उत्पादन लागत पर नियंत्रण का उद्देश्य ही नाकाम हो जाता है और किसान बाजार से खरीदी जाने वाली बाहरी चीजों पर निर्भर हो जाते हैं।

जैविक खेती के सिद्धांत

जैविक खेती निम्नलिखित चार सिद्धांतों[45] पर आधारित है :

स्वास्थ्य : जैविक खेती की भूमिका पारिस्थितिकी तंत्रों एवं मिट्टी से लेकर लघु से लघुतम जीवों एवं मनुष्यों तक के स्वास्थ्य को बनाए रखने और उनके संवर्धन की है। इसलिए, इसमें उन रासायनिक उर्वरकों, कीटनाशकों, जानवरों की दवाओं और खाद्य पोषक तत्व–वर्द्धक दवाओं का इस्तेमाल नहीं किया जाता, जिनका स्वास्थ्य पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है।[46]

पारिस्थितिकी : पारिस्थितिकीय संतुलन के लिए स्थानीय स्थितियों, पारिस्थितिकी और संस्कृति के मुताबिक जैविक खेती की जानी चाहिए। यह जीवंत पारिस्थितिकीय प्रणालियों एवं चक्रों के साथ की जाए और उन्हें जारी रखने में मदद मिले। इससे पर्यावरण की गुणवत्ता बढ़नी चाहिए और इस्तेमाल, पुनः इस्तेमाल एवं रिसाइक्लिंग द्वारा संसाधनों का संरक्षण तथा सामग्री एवं ऊर्जा का कुशल प्रबंधन होना चाहिए।[47]

निष्पक्षता : जैविक खेती द्वारा प्रत्येक व्यक्ति को एक अच्छा जीवन स्तर और गरीबी घटाने में योगदान मिलना चाहिए। इसका उद्देश्य एक समुचित सामाजिक एवं पारिस्थितिकीय तरीके से प्राकृतिक और पर्यावरण संबंधी संसाधनों के इस्तेमाल के लिए अच्छी गुणवत्ता वाले खाद्य पदार्थों की आपूर्ति करना है।[48]

देखभाल : वर्तमान एवं भावी पीढ़ियों के स्वास्थ्य की रक्षा, उनके कल्याण एवं पर्यावरण की सुरक्षा के लिए भी एक जिम्मेदार तरीके से जैविक खेती की जानी चाहिए। जैविक खेती में विकास एवं प्रौद्योगिकी संबंधी पसंद चुनने में एहतियात बरतनी चाहिए। वैज्ञानिक ज्ञान के साथ व्यावहारिक अनुभव और पारम्परिक तरीके यह सुनिश्चित करने के लिए अपनाए जाएं कि जैविक खेती स्वास्थ्यवर्धक और पारिस्थितिकीय रूप से मजबूत हों।[49]

जैविक खेती के उद्देश्य

खेती के आधुनिक तरीकों में लंबे समय तक कृत्रिम उर्वरकों, कीटनाशकों और शाकनाशकों (हरबिसाइड्स) का इस्तेमाल कई प्रतिकूल प्रभाव पैदा करता है। इसके दुष्परिणाम मिट्टी में निम्न स्तरीय जैविक पदार्थ तत्व, कमजोर संरचना, वायुमिश्रण, पोषक तत्वों में घटती उपलब्धता के रूप में सामने आते हैं। कृत्रिम रसायन

[45] "Principles of Organic Agriculture - Preamble", International Federation of Organic Movement (IFOAM), Germany. Online at: http:www.ifoam.org. Retrieved from: http://www.ifoam.org/sites/default/files/ifoam_poa.pdf

[46] "Organic Farming", Thiruporur Farmers Network, Thiruporur. Retrieved from: http://thiruporurfarmers.blogspot.in/2012/12/ organic-farming.html

[47] Ibid.

[48] Ibid.

[49] Ibid.

आसानी से मिट्टी से बह जाते हैं और नदियों एवं झीलों को प्रदूषित करते हैं। ये हमारी खाद्य श्रृंखला में भी घुस जाते हैं, जहां जानवरों एवं मनुष्यों के शरीर में संचित होते हैं और स्वास्थ्य संबंधी समस्याएं पैदा करते हैं। शत्रु–कीटों और बीमारियों पर नियंत्रण कठिन हो जाता है क्योंकि ये कृत्रिम कीटनाशकों के प्रतिरोधी बन जाते हैं।[50]

इन समस्याओं के मद्देनजर जैविक खेती के उद्देश्य दीर्घकालिक रूप से मिट्टी के उपजाऊपन में वृद्धि, पर्यावरण को हानि पहुंचाए बिना शत्रु–कीटों एवं बीमारियों पर नियंत्रण, जल की स्वच्छता एवं सुरक्षा सुनिश्चित करना, खेती की चीजों की लागत घटाने के लिए उपलब्ध संसाधनों का उपयोग और ऐसी उच्च गुणवत्ताशील एवं पोषक फसलों के उत्पादन से मुनाफे में वृद्धि करना है, जो एक अच्छे दाम पर बिक सकें।

जैविक खेती में इस्तेमाल होने वाले तरीके[51]

जैविक खेती में बेहतरीन नतीजे पाने के लिए एक व्यवस्थित तरीके से इसके आवश्यक भागों को विकसित किया जाना चाहिए।

1. प्राकृत्रिक वास का विकास,
2. कृषि निवेश की चीजों के उत्पादन के लिए खेत पर सुविधाएं,
3. फसलें उगाने का अनुक्रम (सिक्वेंस) एवं मेल की फसलों का नियोजन (कॉम्बिनेशन प्लानिंग),
4. 3–4 साल की रोटेशन योजना, और
5. क्षेत्र, मिट्टी एवं जलवायु के अनुकूल फसलों का उत्पादन।

खेत पर सुविधाओं और प्राकृत्रिक वास का विकास

ढांचागत सुविधाएं : खेत का 3–5 प्रतिशत स्थान मवेशियों, केंचुए की खाद की क्यारियां, कम्पोस्ट टैंक, सिंचाई का कुआं, जल पम्पिंग की ढांचागत सुविधा और उन साधनों के लिए आरक्षित रखना चाहिए, जिनके जरिए संसाधनों के असरदार इस्तेमाल से उत्पादकता में वृद्धि होती है। इस स्थान में उपयोगी ढांचागत सुविधाओं पर छाया के लिए न्यूनतम 5–7 पेड़ उगाए जाएं। उपयुक्त स्थानों पर वर्षा जल के संरक्षण के लिए टैंक खुदवाना चाहिए। तरल खाद तैयार के लिए लगभग 200 लीटर के टैंक और वनस्पतियों के लिए कुछ टैंक या पीपे रखना चाहिए।[52]

प्राकृत्रिक वास एवं जैव–विविधता : जीवों के विभिन्न रूपों के भरण–पोषण के लिए एक उपयुक्त प्राकृतिक वास जैविक खेती का आवश्यक हिस्सा है। यह स्थानीय जलवायु के अनुकूल विभिन्न किस्मों के पेड़ और झाड़ियां लगा कर बनाया जा सकता है। पेड़ एवं झाड़ियां, वायु और मिट्टी की गहरी परत से पोषक तत्व सतह

[50] "What is Organic Farming?" HDRA – The Organic Organisation, United Kingdom, 1998.
Online at: Website: www.hdra.org.uk Retrieved from: http://www.infonet-biovision.org/res/res/files/488.OrgFarm.pdf

[51] Yadav, A.K. "Organic Agriculture, (Concept, Scenario, Principals and Practices)", National Centre of Organic Farming, Department of Agriculture and Cooperation, Ministry of Agriculture, Govt. of India. Retrieved from: http://ncof.dacnet.nic.in/Training_manuals/Training_manuals_in_English/Organic_Agriculture_in_India.pdf

[52] Ibid.

पर लाना सुनिश्चित करते हैं। ये पक्षियों, जीवभक्षियों एवं मित्र–कीटों को भी आकर्षित करते हैं और उन्हें भोजन एवं आश्रय देते हैं। पेड़ों की छाया के प्रभाव से होने वाले उत्पादन की कुछ कमियों की भरपाई कीटों की समस्याओं में कमी से हो जाती है।[53]

मिट्टी को जैविक बनाना

रसायनों पर रोक : पौधों की कुछ जैविक प्रक्रियाएं पोषक तत्व पाने में लगी रहती है, जैसे– नाइट्रोजन, जो उन्हें रासायनिक नाइट्रोजन उर्वरक से मिलता है, मगर इससे सूक्ष्मीजीवों में कमी आती है। इसलिए, जैविक खेती में रसायनों से बचा जाता है और जैविक कम्पोस्ट को बढ़ावा दिया जाता है।[54]

खाद का इस्तेमाल और मिट्टी को उपजाऊ बनाना : समुचित मात्रा में अच्छी तरह गले जैविक पदार्थ, हरित खाद, पौधे के सूखे कचरे, मवेशियों के गोबर के खाद और जैव–उर्वरकों जैसी जैविक चीजों के इस्तेमाल के जरिए मिट्टी के उपजाऊपन में सुधार लाया जा सकता है। अच्छी तरह भरण–पोषित एवं स्वस्थ मिट्टी, जिसमें मौजूद सूक्ष्म जीवाणु (Micro Fauna) एवं सूक्ष्म वनस्पति (Micro Flora) फसलों की पोषण–जरूरतों की पूर्ति करते हैं। इसलिए, ज्यादा मात्रा में खाद के इस्तेमाल से परहेज किया जाना चाहिए।[55]

तरल जैविक खाद : मिट्टी में लघु सूक्ष्मजीवों एवं जीवन के अन्य रूपों की गतिविधि बनाए रखने के लिए तरल खाद डालना आवश्यक है। बहुत सामान्य रूप से उपलब्ध जैविक सामग्रियों से कुछ तरल खाद तैयार करने के आसान तरीके निम्नलिखित हैं :

पंचगव्या : गाय के 5 किलो ताजा गोबर, गाय के 3 लीटर मूत्र, गाय के 2 लीटर दूध, 2 लीटर दही, गाय के 1 लीटर बटर ऑयल को मिलाएं और 7 दिन तक सड़ने दें। प्रतिदिन दो बार मिश्रण को हिलाएं। ३ लीटर पंचगव्या को 100 लीटर पानी में डाल कर उसे पतला करें और मिट्टी पर छिड़काव करें। मिट्टी पर छिड़कने के लिए प्रति एकड़ सिंचाई के पानी के साथ 20 लीटर पंचगव्या की जरूरत पड़ती है।[56]

अमृतपानी : गाय के 10 किलो गोबर में 500 ग्राम शहद मिलाएं और एक मलाईदार लेई बनाने के लिए घोटें। इसमें गाय का 250 ग्राम देसी घी मिलाएं और तेज गति से मिलाएं। इसे 200 लीटर पानी में पतला करें। इस घोल का मिट्टी के 1 एकड़ क्षेत्र में या सिंचाई के पानी के साथ छिड़काव करें। 30 दिनों के बाद पौधों की बीच की पंक्तियों में या सिंचाई के पानी के जरिए दूसरी खुराक छिड़कें।[57]

---

[53] Ibid.

[54] Ibid.

[55] Ibid.

[56] Panchagavya: How to Make. Retrieved from Agriculture Information. Online at: http://www.agricultureinformation.com/forums/general-questions-answers/15995-panchagavya-how-make.html

[57] Bindumathi Mohan, "Preparation of Amritpani", Appendix -3, Evaluation of Organic Growth Promoters on Yield of Dryland Vegetable Crops In India, T.S. Srinivasan Centre For Rural Training (TVSES), Hosur, India. Retrieved from: http://www.organic-systems.org/journal/Vol_3(1)/pdf/23-36%20Mohan.pdf

जीवामृत : 200 लीटर पानी में 10 किलो गाय का गोबर, 10 लीटर गोमूत्र, 2 किलो गुड़, 2 किलो किसी भी दाल का आटा और 1 किलो वन मिट्टी मिलाएं। इसे 5 से 7 दिन तक सड़ने दें। इस घोल को नियमित रूप से एक दिन में तीन बार हिलाएं। इसका सिंचाई के पानी के एक एकड़ जमीन पर इस्तेमाल करें।[58]

पत्ते–पत्तियों से ढकाव (मल्चिंग) : खेती की इस तकनीक में फसल उगाने के दौरान कटे पत्तों, तिनकों के पत्तों और खेत के जैविक कूड़े–कर्कट से खुली मिट्टी को ढका जाता है। इस तरीके से फसलों के बीच खुली पड़ी ऊपरी मिट्टी के बहाव की रोकथाम होती है। इससे मिट्टी के उपजाऊपन और मिट्टी के प्रवेश की क्षमता का संवर्धन भी होता है, जिससे उसकी जल–धारण क्षमता बढ़ती है एवं खरपतवारों पर नियंत्रण रहता है।

मल्चिंग से सूक्ष्म जीवाणुओं और केंचुओं की वृद्धि होती है, जो मिट्टी की गुणवत्ता में सुधार के लिए जरूरी है। इससे प्रति एकड़ फसल की उपज बढ़ती है।[59]

मल्चिंग के दो प्रकार :

अस्थायी मल्चिंग : इस प्रकार की मल्चिंग में मल्च में सूखे हरे पत्ते और सब्जी के कचरे को कम्पोस्ट में मिश्रित किया जाता है, जिसकी परत परती मिट्टी पर चढ़ाई जाती है और उसे जोता जाता है। फसल की रोपाई के बाद मिट्टी पर फिर मल्चिंग की जाती है। इससे सूखे पत्ते और सब्जी का पदार्थ गल जाता है और मिट्टी को आवश्यक पोषक तत्व मिलते हैं।

स्थायी मल्च : इसमें पूरी तरह से गले कम्पोस्ट, अर्द्ध–कम्पोस्टेड खेत के कचरे और खेत के ताजा कचरे एक साथ मिश्रित किए जाते हैं और बाल–पौधों के प्रतिरोपण से पहले उसका एक मोटी परत के रूप में मिट्टी पर छिड़काव किया जाता है। इस तरीके में एक साल में सिर्फ दो बार खेत के कचरे की ताजा परत जोड़ी जाती है और मिट्टी को पुनः खोदने की जरूरत नहीं पड़ती। इसको बनाए रखने के लिए मल्च पर बार–बार पानी डाला जाता है।[59]

जैव–उर्वरकों और सूक्ष्म जीवाणु समूह का इस्तेमाल[60]

जैव–उर्वरकों में रिजोबियम (rhizobium), एजोटोबेक्टर (azotobacter), एजोस्पिरिल्लुम (azospirillum), फोस्फेट सोलुबिलाइजिंग बैक्टीरिया (पी.एस.बी.) {phosphate solubilizing bacteria (PSB)} और सुडोमोनास (pseudomonas) होते हैं। जैव–उर्वरकों को बीजों, पौधे की सतहों या मिट्टी पर इस्तेमाल किया जाता है ताकि मेजबान पौधे में प्राथमिक पोषक तत्व की आपूर्ति बढ़ा कर उनके विकास को बढ़ावा दिया जाए। हाल ही में स्थानीय जलवायु की स्थितियों के अधिक अनुकूल जैव–उर्वरक विकसित किए गए और वाणिज्यिक रूप से उपलब्ध कराए गए हैं।

---

[58] Yadav, A.K. "Organic Agriculture, (Concept, Scenario, Principals and Practices)", National Centre of Organic Farming, Department of Agriculture and Cooperation, Ministry of Agriculture, Govt. of India. Retrieved from: http://ncof.dacnet.nic.in/Training_manuals/Training_manuals_in_English/Organic_Agriculture_in_India.pdf

[59] Ibid.

[60] Ibid.

इस्तेमाल के तरीके

जैव–उर्वरक तीन विभिन्न तरीकों से फसलों और पौधों पर इस्तेमाल किए जा सकते हैं :

बीज उपचार : 300–400 मिली. पानी में एजोटोबेक्टर / एजोस्पिरिल्लुम और पी.एस.बी को 200–200 ग्राम घोलें और पूरी तरह मिश्रित करें। इस घोल को 10–12 किलो बीज में डालें और उसे तब तक हाथ से मिश्रित करते रहें, जब तक कि सभी बीजों पर समान रूप से परत न चढ़ जाए। उपचारित बीजों को छाया में सुखाएं और उनकी शीघ्र बुआई करें।

बाल–पौधों की जड़ का उपचार : पानी की पर्याप्त मात्रा (5–10 लीटर, एक एकड़ में बाल–पौधों के प्रतिरोपण के लिए आवश्यक मात्रा पर आधारित) में एजोटोबेक्टर एजोस्पिरिल्लुम और पी.एस.बी को 1–2 किलो घोलें। प्रतिरोपण से 20–30 मिनट पहले बाल–पौधों की जड़ें इस घोल में डूबाएं। धान के मामले में खेत में एक पर्याप्त आकार की क्यारी (2 मीटर लंबी ग 1 मीटर चौड़ी ग 0.15 मीटर ऊंची) बनाएं, उसमें 5 सेमी. तक पानी भरें और एजोस्पिरिल्लुमंड और पी.एस.बी. 2–2 किलो घोलें और उसे पूरी तरह मिश्रित करें। अब इस क्यारी में 8–12 घंटे तक (रात भर) बाल–पौधों की जड़ें डूबाएं और उसके बाद प्रतिरोपण करें।

मिट्टी का उपचार : मिट्टी के उपचार के लिए प्रति एकड़ पौधों की संख्या के आधार पर एक एकड़ के लिए 2–4 किग्रा. एजोटोबेक्टर (azotobacter) / एजोस्पिरिल्लुमंड (azospirillumand) और 2–4 किलो पी.एस.बी. जरूरत पड़ती है। अलग से 2–4 लीटर पानी में जैव–उर्वरक मिश्रित करें और इस घोल का 50–100 किलो कम्पोस्ट के दो अलग ढेरों पर छिड़काव करें। अलग से इन दो ढेरों को मिश्रित करें और रात भर सेनाई (इनक्यूबेशन) के लिए छोड़ दें। 12 घंटे के बाद इन दोनों ढेरों को साथ में मिश्रित करें। अम्लीय मिट्टी के लिए इस मिश्रण में 25 ग्राम चूना मिलाएं।

बीज का उपचार

जैविक प्रबंधन में सिर्फ समस्यात्मक स्थितियों में रक्षा उपाय किए जाते हैं। बीमारी–मुक्त बीज स्टॉक और प्रतिरोधी किस्में ही बेहतरीन विकल्प हैं। इस बारे में कोई भी मानक सूत्र (स्टैंडर्ड फोर्मूलेशन) या उपचार पद्धति उपलब्ध नहीं है, पर किसान विभिन्न तरीके अपनाते हैं। नीचे कुछ नवोन्मेषी बीज उपचार सूत्र दिए जा रहे हैं :[61]

- 20–30 मिनट तक 53 डिग्री सेंटीग्रेड पर गर्म पानी का उपचार,
- गोमूत्र या दीमक के टीले की मिट्टी एवं गोमूत्र का घोल,
- बीजामृत – कपड़े के एक थेले में 5 किलो ताजा गोमूत्र डालें और गोबर की घुलनशील सामग्री निकालने के लिए उसे पानी से भरे एक कंटेनर में छोड़ दें। अलग से 1 लीटर पानी में 50 ग्राम चूना

[61] Yadav, A. K. "Organic Agriculture, (Concept, Scenario, Principals and Practices)", National Centre of Organic Farming, Department of Agriculture and Cooperation, Ministry of Agriculture, Govt. of India. Retrieved from: http://ncof.dacnet.nic.in/Training_manuals/Training_manuals_in_English/Organic_Agriculture_in_India.pdf

मिट्टी घोलें। 12–16 घंटे के बाद सत्व पाने के लिए थेले को दबाएं और उसमें 5 लीटर गोमूत्र, 50 ग्राम वन की मिट्टी, चूना पानी और 20 लीटर पानी मिलाएं। 8–12 घंटे तक उसकी सेनाई करें। इस सामग्री को छानें एवं छनी हुई सामग्री का बीज उपचार के लिए इस्तेमाल करें, और

- 10 किलो बीजों के लिए 1 लीटर पानी में 250 हींग पाउडर मिलाएं।

सूखी हल्दी की जड़ों के पाउडर और गोमूत्र से बीज उपचार[62]

10 लीटर पानी उबालें एवं उसे ठंडा करें और एक दिन तक उसे रखें। अगली सुबह इस पानी में 4 लीटर गोमूत्र और 200 ग्राम हल्दी पाउडर मिलाएं। अच्छी तरह हिलाएं। इसके बाद, बोए जाने वाले बीज इस घोल में मिलाएं और अच्छी तरह मिश्रित करें। वे खराब बीज हटाएं, जो घोल की सतह पर तैरते हों। इस घोल में बाकी बीजों को 15 मिनट तक रहने दें। घोल को छानें और बीजों को अलग करें। ये बीज सीधे खेत में बोए जा सकते हैं। यह तरीका रोगजनकों और कीटों से रक्षा एवं प्रतिरोध प्रदान करता है।

1 किलो बीज के उपचार के लिए 1 लीटर गोमूत्र और 50 ग्राम हल्दी पाउडर आवश्यक होता है।

ज्वार के बीज का उपचार[63]

- हींग (Asafetida) पाउडर के सोलुशन (1 लीटर पानी में 75–100 ग्राम) के साथ ज्वार बीजों का उपचार करें और बुआई से पहले उन्हें छाया में सुखाएं। यह बीज उपचार ज्वार में अर्गट बीमारी को रोकता है।
- पानी में बीजों को अश्वगंधा के सत्व एवं धतूरा (1 किलो बीजों के लिए 250 ग्राम अश्वगंधा)/अमुकुरा (विथानिया सोम्निफेरा/Withania Somnifera) की जड़ें और 50 ग्राम धतूरा/ओमाथाई (धतूरामितेल/Daturametel) मिलाएं और बुआई से पहले उन्हें छाया में सुखाएं। इससे स्वस्थ एवं बीमारी–मुक्त बाल पौधों के उत्पादन में मदद मिलेगी।

तापमान का प्रबंधन

गर्मी के महीनों में मिट्टी पर जैविक मल्च ढक कर उच्च तापमान का प्रबंधन किया जा सकता है। कहा जाता है कि इस मल्च से मिट्टी में नमी संरक्षित होती है और जल के उपयोग की कुशलता में सुधार आता है। मेढ़ों पर नीम, आंवला, इमली, गुलर जैसे पेड़ और बेर (zizipus) के झाड़ और ग्लिरिसिड़िया (gliricidia) उगाकर तापमान नियंत्रित किया जा सकता है।

[62] Rural Organic Farming Technologies in Integrated Polyculture Farming System, online at: http://www.farminggroup.org/index.aspRetrieved from: http://www.farminggroup.org/ipfs/generalinfo/ruralorganicfarming_showsub.asp

[63] Sridhar, Subhashini. et al. "Seed Treatment techniques for Millets", in Seed Treatment Techniques (K. Vijayalakshmi, Ed.) Centre for Indian Knowledge Systems, Chennai, Revitalising Rainfed Agriculture Network, December 2013 p5. Retrieved from: http://www.ciks.org/6.%20Seed%20Treatment%20Techniques.pdf

कीट प्रबंधन[64]

जैविक खेती में कृत्रिम रसायनों का इस्तेमाल वर्जित है, इसलिए कीटों (कीड़े–मकोड़ों) का प्रबंधन इन चीजों के द्वारा किया जाता है : (1.) पारम्परिक कृषि विज्ञान या सस्यविज्ञानीय (एग्रोनोमिक), (2.) यांत्रिक (मेकेनिकल), (3.) जैविक, या (4.) जैविक रूप से स्वीकार्य वानस्पतिक सत्व या कुछ रसायनों जैसे– कॉपर सल्फेट और सॉफ्ट सोप, आदि।

पारम्परिक कृषि विकल्प : कीटों के जैविक प्रबंधन में बीमारी–मुक्त बीज या स्टॉक और प्रतिरोधी किस्में बेहतरीन रोकथाम का तरीका है। जैव–विविधता बनाए रखना, असरदार तरीके से फसल बदल–बदल कर लगाना, बहु–फसलीय पद्धति को अपनाना, प्राकृतिक वास का फेरबदल या पाश फसलों (ट्रैप–क्रॉप्स) का इस्तेमाल भी असरदार तरीके हैं, जो कीटों की आबादी को बहुत कम रख सकते हैं।

यांत्रिक (मेकेनिकल) विकल्प : प्रभावित पौधे एवं पौधे के अंग, कीड़ों के अंड समूहों एवं इल्लियों को एकत्र एवं नष्ट करना, पक्षी के बैठने के स्थान का निर्माण, रोशनी का कीट फंदा (light traps), चिपकने वाली रंगीली पट्टिकाओं और फीरोमोन फंदा (Pheromone traps) शत्रु–कीटों के नियंत्रण के असरदार यांत्रिक तरीके हैं।

जैविक विकल्प : जीवभक्षियों एवं रोगजनकों का इस्तेमाल शत्रु–कीटों की समस्या में भारी कमी लाने का एक असरदार तरीका साबित हुआ है। बुआई के 15 दिन बाद प्रति हेक्टेयर 40,000–50,000 अंडों की दर से त्रिचोग्रामा स्पा (Trichogama Sp) एवं प्रति हेक्टेयर 5,000 अंडों की दर से क्रिससोपेर्ला (Chrysoperla Sp) और बुआई के 30 दिनों बाद अन्य परजीवियों एवं जीवभक्षियों को खेत में छोड़ने से जैविक खेती में कीड़े–मकोड़ों की समस्या पर नियंत्रण हो सकता है।

वानस्पतिक कीटनाशक : कई पौधों में कीटनाशकीय गुण होते हैं और शत्रु–कीटों के नियंत्रण में उनके सत्वों या परिष्कृत रूपों का इस्तेमाल किया जा सकता है। इस उद्देश्य से पहचाने गए पौधों में नीम सबसे असरदार पाया गया है, जो लगभग 200 कीटों, कीड़े–मकोड़ों और सूत्रकृमि (नेमोडोड्स) के प्रबंधन में मदद करता है। यह टिड्डियों (grasshoppers), पौध–टिड्डियों (leaf-hoppers), एफिड्स (aphids), जैसिड्स (jassids) एवं इल्लियों (caterpillars) पर लगाम लगाने का असरदार साधन है। नीम के सत्व बीटल कीटों (beetle), इल्लियों, तितलियों, कीट–पतंगों, टिड्डियों (moth) पर असरदार साबित होते हैं।

मिश्रित पत्तों के सत्व : 10 लीटर गोमूत्र में 3 किलो नीम के पत्ते मसलें। पानी में 2 किलो सीताफल या शरीफा के पत्ते, 2 किलो पपीते के पत्ते, 2 किलो अनार के पत्ते और 2 किलो अमरूद के पत्ते मसलें। इन दोनों को मिश्रित करें और 5 बार कुछ अंतराल पर तब तक उबालें, जब तक कि यह आधा न हो जाए। 24 घंटे तक रखने के बाद इस सत्व को छानें। इसे 6 महीने तक बोतल में रखा जा सकता है। एक एकड़ भूमि के लिए 2–2.5 लीटर सत्व 100 लीटर पानी में मिलाएं। यह सत्व चूसक–कीड़ों और फली–कीड़ों या फल छेदक–कीड़ों पर काबू पाने में उपयोगी है।

---

[64] Yadav, A.K. "Organic Agriculture, (Concept, Scenario, Principals and Practices)", National Centre of Organic Farming, Department of Agriculture and Cooperation, Ministry of Agriculture, Govt. of India. Retrieved from: http://ncof.dacnet.nic.in/Training_manuals/Training_manuals_in_English/Organic_Agriculture_in_India.pdf

जैविक खेती से जुड़े तरीके

जैविक खेती में खेती के वे विभिन्न तरीके शामिल हैं, जिनमें रासायनिक उर्वरकों एवं कीटनाशकों का इस्तेमाल नहीं किया जाता। जैविक खेती का उद्देश्य न सिर्फ रसायन–आधारित खेती से दूर रहना, बल्कि जहर–मुक्त खाद्य फसलें उगाना, बेहतर एवं अधिक विविध फसलों की उत्पादकता और छोटे किसानों के लिए खाद्य सुरक्षा पाना भी है। बहु–फसलीय पद्धति से उत्पादन और फसल बदल–बदल कर लगाना जैविक खेती प्रणालियों की दो प्रमुख विशेषताएं हैं क्योंकि ये स्वास्थ्यवर्धक मिट्टी के निर्माण, कीट नियंत्रण और उत्पादकता में वृद्धि के तंत्र प्रदान करती हैं।

छोटे किसानों के लिए बहु–फसलीय पद्धति और फसल रोटेशन (बदल–बदल कर लगाने) के तरीकों से उत्पादन के इस्तेमाल का उद्देश्य फसल रोटेशन के प्रबंधन को समझने, फसल रोटेशन से जुड़ी समस्याओं से दूर रहने और विविध फसलों के उत्पादन के क्रम के इस्तेमाल के जरिए मिट्टी को बेहतर बनाना, कीट नियंत्रण और लाभदायक खेत का विकास है।[65]

बहु–फसलीय पद्धति से उत्पादन

मिश्रित खेती जैविक खेती की एक प्रमुख विशेषता है, जिसमें एक ही खेत में एक साथ या समय बदल कर कई किस्म की फसलों की पैदावार की जाती है। मिश्रित खेती प्रकाश संश्लेषण को बढ़ावा देती है और पोषक तत्वों में प्रतिस्पर्धा नहीं होती क्योंकि भिन्न–भिन्न पौधे मिट्टी की भिन्न–भिन्न गहराई से पोषक तत्व खींचते हैं।

नोट : अधिक विवरण के लिए कृपया इस पुस्तिका में ''बहु–फसलीय पद्धति से उत्पादन की प्रणालियां'' पर अध्याय देखें।

फसल रोटेशन

फसल रोटेशन जैविक खेती के तरीकों की आधारशिला है। मिट्टी को स्वस्थ रखने और प्राकृतिक सूक्ष्मीजीवी प्रणालियों के कार्य के लिए फसल रोटेशन बहुत जरूरी है। फसल रोटेशन एक ही खेत पर विभिन्न फसलें उगाने का सिलसिला है। किसानों को बेहतरीन नतीजों के लिए 3–4 सालों की रोटेशन योजना पर अमल करना चाहिए। पोषक तत्वों की उच्च मांग–आधारित फसलों से पहले और बाद में दाल प्रजाति–बहुल फसलों का मेल किया जाना चाहिए। अन्य तरीका कीड़ा–मेजबान और गैर–कीड़ा मेजबान फसलों का रोटेशन है, जिसमें मिट्टी–जनित बीमारियों, कीड़े–मकोड़ों और खरपतवार पर नियंत्रण में मदद मिलती है। दाल प्रजाति–बहुल फसलों के साथ अनाज एवं सब्जियों की फसलों का रोटेशन किया जाए। हरित खाद की फसलों को रोटेशन योजना में समुचित स्थान दिया जाना चाहिए।

फसल रोटेशन के कुछ फायदे निम्नलिखित हैं :

क. सभी पौधों की समान पोषक–जरूरतें नहीं होती हैं,

[65] Mohler, L. Charles. Sue Ellen Johnson, (Eds.), "Crop Rotation On Organic Farms: a planning manual", Natural Resource, Agriculture, and Engineering Service (NRAES) Cooperative Extension, July 2009. Retrieved from: http://www.nraes.org

ख. जड़ों की विभिन्न किस्मों के जरिए मिट्टी की संरचना में सुधार होता है,

ग. शत्रु–कीटों का प्रसार रूकता है, और

घ. खरपतवार का प्रसार रूकता है।

भारत में सफल जैविक खेत

1. कर्नाटक में हुबली जिले के हाल्याल गांव का 67 वर्षीय किसान निन्गप्पा बेलावातगागी ने 40 सालों तक अपनी फसलों में रासायनिक उर्वरकों का इस्तेमाल किया था। लेकिन, उसे तब भारी झटका लगा, जब लगातार 3 सालों तक उसकी मिर्ची की फसलें चौपट हो गईं। इन भारी नुकसान की वजह रसायनों का इस्तेमाल पाया गया। निन्गप्पा 2002 में एक स्वयंसेवी संस्था के संपर्क में आया, जो जैविक खेती से जुड़ी थी। उसकी सलाह पर निन्गप्पा ने अपनी खेती की 12.5 एकड़ जमीन में से 2.5 एकड़ जमीन पर जैविक खेती शुरू करने का फैसला लिया। जैविक खेती से उसको तीन साल तक कोई मुनाफा नहीं मिला, लेकिन 2005 से उसकी कड़ी मेहनत रंग लाने लगी। निन्गप्पा पहले एक एकड़ जमीन पर फसलें उगाने के लिए रासायनिक उर्वरकों और कीटनाशकों पर 20,000 रु. खर्च करता था, लेकिन जैविक खेती शुरू करने पर उसे मात्र 5,000 रु. ही खर्च करने पड़ते हैं। जैविक खेती से यह मुनाफा पाकर निन्गप्पा ने अपने पूरे 12.5 एकड़ की जमीन को जैविक खेत में तब्दील कर दिया। वर्तमान में उसके परिवारजन सिर्फ जैविक खाद्य पदार्थों का इस्तेमाल करते हैं, जिनमें जैविक ज्वार, हरा चना, मिर्ची, सब्जियां, मूंगफली और तेल भी शामिल हैं। निन्गप्पा की इस कामयाबी को देख कर उसके गांव के लगभग 70 परिवार भी उसके पदचिन्हों पर चलने लगे।[66]

2. ओडूर का खेत मैंगलोर शहर से लगभग 25 किमी. की दूरी पर स्थित है। राजेश नायक ने अपनी पैतृक बंजर जमीन के दो एकड़ में 50 फुट गहरी एक झील विकसित की और पूरी जमीन को एक आत्मनिर्भर जैविक खेत के रूप में तब्दील कर दिया। इस झील में 40,000 लीटर पानी रहता है, जिसका पूरे खेत की सिंचाई के लिए इस्तेमाल किया जाता है। इस क्षेत्र में ओडूर खेत विशाल जैविक खेतों में से एक है, जिसके 10 एकड़ में सुपारी के पौधे रोपने के अलावा नारियल, आम, हल्दी, काली मिर्च, केले, काजू, फल और सब्जियों की पैदावार की जाती है। राजेश ने एक डेयरी फार्म भी शुरू किया, जिसमें लगभग 200 गायें है, जो लगभग 800–1,000 लीटर दूध देती हैं और कर्नाटक मिल्क फेडरेशन नियमित रूप से यह दूध खरीदता है। यह खेत प्रत्येक पहलू से आत्मनिर्भर है। एक शेड में घास काटने की बड़ी मशीन है, जिससे मवेशियों को पर्याप्त हरी घास खाने को मिलती है। इस खेत में गाय के गोबर और मूत्र से जैविक खाद तैयार किया जाता है और उसके साथ जड़ी–बूटियां मिला कर जैविक कीटनाशक तैयार किए जाते हैं। गाय के शेड से मटमेले पानी के साथ गाय का गोबर एवं मूत्र लेकर एक टैंक में एकत्र किया जाता है और सड़ाने के बाद मीथैन (एक हाइड्रोकार्बनशील गैस) बनाई जाती है। इस

[66] Kattimani, F. Basavaraj. "Farmer scripts organic farming success", *Times of India*, October 2009. Retrieved from: http://timesofindia.indiatimes.com/city/hubballi/Farmer-scripts-organic-farming-success/articleshow/6837267.cms

मीथैन के इस्तेमाल से 60 के.वी. के जनरेटर को चला कर पूरे खेत के लिए बिजली पैदा की जाती है। पैदा किया गया पतला मसाला खेत में इस्तेमाल किया जाता है, जो खनिजों एवं केल्शियम की दृष्टि से समृद्ध है।[67]

3. सुरेश देसाई भारत में कर्नाटक राज्य के बेलगाम जिले में 20–25 सालों से जैविक खेती कर रहे हैं और ओर्गेनिक फार्मर्स क्लब के एक संस्थापक सदस्य हैं। इसके 40 सदस्य हैं, जिनमें से कुछ पहले से जैविक फसलें उगा रहे हैं, जबकि अन्य जैविक खेती की ओर मुड़ने की प्रक्रिया में अग्रसर हैं। अपने 4.5 एकड़ के खेत में देसाई ने गन्ने एवं तंबाकू की पैदावार की। गन्ना एक जल–प्रधान फसल है। आरंभ में उन्होंने गन्ने की कटाई के बाद छत को ढकने के लिए कुछ अवशिष्ट का इस्तेमाल किया और बाकी अवशिष्ट जला देते थे। अवशिष्ट जलाने से कीट का प्रसार रूकता है, पर पहली सिंचाई के दौरान अधिकतर राख बह जाती है। इसलिए, वे लाभ कम हो जाते हैं, जो राख से मिल सकते हैं। उन्होंने मिट्टी का उपजाऊपन बनाए रखने के लिए शुरू में रासायनिक उर्वरकों का इस्तेमाल भी किया था। बाद में, रासायनिक उर्वरकों के हानिकारक प्रभावों के बारे में जानने पर उन्होंने कम्पोस्ट खाद बनाने में ढकने के लिए अवशिष्ट के इस्तेमाल का फैसला किया। उन्होंने एक जैविक उर्वरक के रूप में इस खाद का मिट्टी पर इस्तेमाल किया। जल मांग में वृद्धि और भूमिगत जलस्तर में गिरावट के चलते भी देसाई ने मल्चिंग के लिए अवशिष्ट का इस्तेमाल किया। उन्होंने अपनी नई खोज और सूझबूझ से वैकल्पिक कतारों में मल्च फैलाई और मल्च की प्रत्येक कतार के बीच जल सिंचाई की। इस प्रकार, वह अपनी सिंचाई जरूरतों में 50 प्रतिशत कमी ला पाए। उन्होंने मल्चिंग के लिए गन्ने के अवशिष्ट का भंडारण जारी रखा और तीन साल में अहसास किया कि रासायनिक उर्वरकों की अब जरूरत नहीं रही है।[68]

[67] Kelkar-Khambete, Aarti. "Transforming 120 acres of barren land into a self-sufficient organic farm: The story of Rajesh Naik and Oddoor farms", The Better India, April, 2013. Retrieved from: http://www.thebetterindia.com/7097/transforming-120-acres-of-barren-land-into-a-self-sufficient-organic-farm-the-story-of-rajesh-naik-and-oddoor-farms/#sthash.kscOVTct.dpuf

[68] "Farmers innovation, community development and the ecological management in organic agriculture", CASE STUDY 1, No-till sugar cane cultivation with alternate row irrigation, Belgaum, Karnataka, India. Retrieved from FAO Corporate Document Repository: http://www.fao.org/docrep/005/y4137e/y4137e07.htm

बॉयो–डायनमिक खेती

''बायोडायनमिक'' शब्द ग्रीक भाषा के दो शब्दों– ''बॉयोज'' और ''डायनमोज'' से मिल कर बना है। ''बॉयोज'' का मतलब जीवन और ''डायनमोज'' का मतलब ऊर्जा होता है। बॉयो–डायनमिक खेती का संबंध उस खेती विज्ञान से है, जो प्रकृति में कार्यरत मूल सिद्धांतों को मानता है और मिट्टी में संतुलन लाने एवं उसे स्वस्थ बनाने के लिए सजीव ताकतों के इस ज्ञान का उपयोग करता है। खेती का यह तरीका खेत को एक जीवंत प्रणाली मानता है, जो पर्यावरण के साथ तालमेल करके स्वस्थ जीवंत मिट्टी बनाए और उसमें ऐसे खाद्य पदार्थों को उगाए, जो पोषण एवं ताकत प्रदान करती है और मानवता के विकास में मदद करती है। आस्ट्रियाई लेखक, शिक्षक एवं सामाजिक कार्यकर्ता डा. रुडोल्फ स्टैनर के विचारों के आधार पर 1920 में पहली बार बॉयो–डायनमिक खेती विकसित की गई थी।[69]

भारत में इंदौर के श्री टी.जी. के. मेनन ने 1990 के दशक के प्रारंभ में बॉयो–डायनमिक खेती आंदोलन शुरू किया था। उन्होंने न्यूजीलैंड के एक किसान पीटर प्रोक्टर के सहयोग से भारतीय किसानों को बॉयो–डायनमिक खेती सिखाई थी।[70]

बॉयो–डायनमिक खेती करने वाले किसान आध्यात्मिक पद्धति का पालन करते हैं और उसके साथ खेतों को टिकाऊ एवं स्व–पोषित बनाने के लिए अनेक कदम उठाते हैं। इस प्रकार, खेत भूमि का सिर्फ एक टुकड़ा नहीं होता, जहां खाद्यान्न पैदा किए जाएं। बॉयो–डायनमिक खेती के तरीके प्रकृति की लय के मुताबिक होते हैं। उदाहरणार्थ, चंद्रमा के चरण का बीज बोने के समय पर प्रभाव पड़ता है या ग्रह पौधे के विकास को प्रभावित कर सकते हैं। इस प्रकार, बॉयो–डायनमिक खेती ज्योतिष संबंधी मान्यताओं और टिकाऊ खेती के तरीकों का एक मेल है।

बॉयो–डायनमिक खेती में रासायनिक उर्वरकों या कीटनाशकों की कोई भूमिका नहीं होती। इसके बजाए किसान प्राकृतिक एव जैव–पोषक प्रदाताओं का इस्तेमाल करते हैं जैसे बैक्टीरिया, शैवाल (एल्गई / algae), कवकमूल (माइकोरहिजा / mycorhiza), एक्शनोमाइसिटी (actinomycetes)। रासायनिक कीटनाशकों के बजाए पक्षियों और परजीवियों जैसे प्राकृतिक जीवभक्षियों के इस्तेमाल से कीट प्रबंधन किया जाता है। इन कारकों का खेत पर संपोषण किया जाता है या उन गतिविधियों से उनकी बढ़ोतरी की जाती है, जो गतिविधियां उनके फलने–फूलने में उनकी मदद करती है। जैविक गतिविधियों को बढ़ावा देने के लिए कम्पोस्टिंग, हरित खाद बनाने, फसल–रोटेशन, मुख्य फसल के बीच अन्य फसलों के उत्पादन, मिश्रित फसलों के उत्पादन के अलावा पक्षियों के बैठने के स्थान एवं पाश–फसलों (ट्रैप–क्रॉप्स) का इस्तेमाल किया

[69] "What is Bio-Dynamic Agriculture?" Bio-Dynamic Association of India (BDAI), Tamil Nadu. Retrieved from: http://www.biodynamics.in/

[70] Ibid.

जाता है। इसी कारण बॉयो–डायनमिक खेती करने वाले दावा करते हैं कि यह एक सम्पूर्ण दृष्टिकोण है, जिसमें मिट्टी, जानवरों, पक्षियों, पारिस्थितिकी तंत्रों एवं भूमंडलीय ताकतों के प्रभावों और किसानों सहित प्रत्येक योगदानकर्ता को शामिल किया गया है। बॉयो–डायनमिक खेती में जीवंत चीजों पर भूमंडलीय प्रभाव को माना गया है, इसलिए चंद्रमा की ग्रहीय स्थितियों के आधार पर पौधारोपण या बीजों की बुआई की इष्टतम तारीख इंगित करने के लिए एक खगोलीय कैलेंडर का उपयोग किया जाता है। इनके अलावा, गाय खेती के इस तरीके की एक अभिन्न अंग है, विशेषकर इसलिए कि खेत पर ही उपलब्ध जैव–संसाधनों से बनाए जाने वाले खाद–मिट्टी एवं गोबर की खाद में गाय के गोबर, गोमूत्र और दूध जैसी प्रमुख चीजों का इस्तेमाल किया जाता है।

बॉयो–डायनमिक खेती के सिद्धांत

- पौध–विविधता : मिट्टी का स्वास्थ्य बनाए रखने के लिए खेती में उपयोग न की गई भूमि (अकृषित भूमि) पर कई किस्म के पौधे उगने दिए जाते हैं, जिसके बाद मिश्रित खेती की जाती है। यह इसलिए किया जाता है क्योंकि पौधे एक सहजीवी संबंध में वास करते हैं (उदाहरणार्थ, यदि एक पौधा एक किस्म के पोषक तत्व को कम करता है तो उस खेत पर अन्य पौधा मिट्टी में उसी पोषक तत्व का प्रसार करता है। इस प्रकार, कम हो गया पोषक तत्व भूमि को मिलता रहता है)। खेत पर पौध–विविधता फसल–रोटेशन से प्राप्त होती है एवं खेत में विविध किस्मों के जानवरों के पालन–पोषण, संरक्षा फसलों एवं हरित खादों के जरिए मिट्टी को समृद्ध करती है तथा परजीवियों में कमी आती हैं और खरपतवारों एवं कीड़े–मकोड़ों का नियंत्रण होता है।

- कम्पोस्टिंग : यह बायो–डायनमिक खेती का एक अभिन्न अंग है। कम्पोस्ट मिट्टी के स्वास्थ्य का संवर्धन करता है। इसमें मुख्य रूप से दोबारा उपयोग की गोबर खाद एवं जैविक कचरा आते हैं, जिन्हें मिला कर एक साथ कई दिनों तक एक कम्पोस्ट गड्ढे में रखा जाता है। यह जैविक कूड़ा–कर्कट गलता, सड़ता और अंततः खाद मिट्टी बनाता है, जो फसल की उत्पादकता के लिए बहुत महत्वपूर्ण है। खाद मिट्टी, मिट्टी में नाइट्रोजन को स्थिर बनाती है, जो फसल की उत्पादकता के लिए बहुत जरूरी है। कम्पोस्टिंग में सहायता के लिए कई जैव–ऊर्जा उपायों का इस्तेमाल किया जाता है। बॉयो–डायनमिक प्रीपेरशंस (बी.डी. प्रीप्स) (जैव–ऊर्जा उपाय) रुडोल्फ स्टैनर द्वारा दिए गए मूल संकेतकों पर आधारित हैं। स्वस्थ खेती के लिए संतुलन जरूरी है, जो किसी न किसी रूप में सिर्फ सभी नौ बी.डी. प्रीप्स (बी.डी. 500–508) के इस्तेमाल द्वारा ही प्राप्त किया जा सकता है। ये नौ बी.डी. प्रीप्स जानवरों, पौधों और खनिज खादों से प्राप्त सत्वों पर आधारित हैं। इनमें से प्रत्येक को डायनमाइजेशन (dynamization) (इसके कुछ उदाहरण गाय के सींग का खाद, बारीक स्फटिक (quartz) हैं) नामक एक प्रक्रिया के जरिए पतला किया जाता (डाइल्यूट) है और होमिओपैथिक तरीके से कम्पोस्ट, मिट्टी एवं पौधों का उपचार किया जाता है।[71]

[71] "Bio-Dynamic Preparations", Josephine Porter Institute for Applied Bio-Dynamics, USA. Online at: https://www.jpibiodynamics.org/product-category/preparations/

- जीवन शक्ति : यह सिद्धांत खेती की अन्य तकनीकों से ऊर्जा खेती को अलग करता है। इस सिद्धांत के अनुसार इस तकनीक में माना गया है कि पृथ्वी के प्रभावों के अलावा ब्रह्मांडीय ताकतें (सूर्य, चंद्रमा और मौसम) भी खेत के जीवन में एक प्रमुख भूमिका निभाती हैं।

बायो–डायनमिक खेती की सफलता पर प्रकाश डालने वाली तमिलनाडु की एक केस स्टडी निम्नलिखित है :

केस स्टडी : मेट्टूपलायम, तमिलनाडु

तमिलनाडु में मेट्टूपलायम के टी. नवनीतकृष्णन बायो–डायनमिक खेती करने वाले एक उत्साही किसान हैं। वह पिछले एक दशक से अपने 5 एकड़ के खेत पर जैविक खेती के साथ बायो–डायनमिक खेती कर रहे हैं। नतीजों के आधार पर उनका दावा है कि खेती का बेहतरीन तरीका जैव–प्रधान खेती है। डा. रुडोल्फ स्टैनर से प्रेरित नवनीतकृष्णन का दावा है कि वह चंद्रमा के शुक्र पक्ष की अग्नि राशि में होने पर पौधारोपण करते हैं और चंद्रमा के कृष्ण पक्ष की अग्नि राशि में होने पर प्रतिरोपण करते हैं। इसी प्रकार, वह चंद्रमा की स्थितियों के मुताबिक कीटनाशकों का छिड़काव, बीज अंकुरण, जुताई और अन्य गतिविधियां करते हैं, जिन्हें बायो–डायनमिक कैलेंडर पर पढ़ा जा सकता है। खेती के इस तरीके से नवनीतकृष्णन ने पौधों की 1,200 किस्मों की पैदावार की है, जिनमें जहर–मुक्त फल, सब्जियां और पत्ते भी शामिल हैं। अच्छे नतीजे मिलने से नवनीतकृष्णन की आकांक्षा है कि वह बायो–डायनमिक खेती को बढ़ावा देने के लिए यह तकनीक किसानों को निःशुल्क सिखाएं।[72]

[72] T. Navaneethakrishnan, "He is an ardent votary of bio-dynamic farming", The Hindu, January, 2007. Retrieved from: http://www.thehindu.com/todays-paper/tp-national/tp-tamilnadu/he-is-an-ardent-votary-of-biodynamic-farming/article1779128.ece

जीरो–बजट की प्राकृतिक खेती[73]

जीरो बजट की प्राकृतिक खेती (जेड.बी.एन.एफ.) एक विशिष्ट प्रकार की खेती है, जो उत्पादन की शून्य (जीरो) लागत पर निर्भर रहती है। इसमें बाजार से बीजों, उर्वरकों और पौध सुरक्षा के अन्य रसायनों को खरीदने की जरूरत नहीं पड़ती, जिससे उनके लिए वित्तीय निवेश नहीं किया जाता। जेड.बी.एन.एफ. करने वाले किसान निजी साहूकारों या सरकारी संस्थाओं से कर्ज लेने पर आश्रित नहीं रहते। इस तरीके की खेती का उद्देश्य किसानों को आत्मनिर्भर बनाना और इस प्रकार मजदूरी के लिए श्रमिक रखने पर भी निर्भरता घटती है। इस तरीके की खेती के लिए सिर्फ देसी नस्ल की गाय ही जरूरी है, जो इस प्रणाली की एक अभिन्न अंग है। इसमें जुताई और निराई की जरूरत भी नहीं पड़ती।

इस प्रणाली में किसान अपने बीज स्वयं पैदा करता है या पड़ोसी किसानों से उधार पर लेता है। इस प्रकार, वह बाजार में उपलब्ध संकर या आनुवंशिक रूप से संशोधित बीजों पर निर्भर नहीं रहता। खेती की इस प्रणाली के जरिए किसान उत्पादन लागत में भारी राहत पाते हैं क्योंकि वे उन रासायनिक उर्वरकों एवं कीटनाशकों के इस्तेमाल से बच सकते हैं, जो खेती में होने वाली लागत का सबसे बड़ा भाग होता है। इस प्रकार, किसान अपने आपको साहूकारों और बाजार से महंगी चीजों की उच्च लागत के शिकंजे से मुक्त रहते हैं।

भारत में जेड.बी.एन.एफ. के प्रणेता सुभाष पालेकर के अनुसार जीरो बजट की खेती (इसे वह जीरो बजट की आध्यात्मिक खेती भी कहते हैं) का मतलब यह है कि उत्पादन लागत शून्य होगी। जेड.बी.एन.एफ. में खेत से बाहर की कोई चीज नहीं खरीदनी पड़ती है। पौधों के विकास के लिए आवश्यक सभी चीजें पौधों के जड़ क्षेत्र के आसपास उपलब्ध रहती हैं। इसमें किसी भी अन्य चीज को बाहर से डालने की जरूरत नहीं पड़ती। हमारी मिट्टी समृद्ध एवं पोषक तत्वों से भरपूर है और फसलें मिट्टी से सिर्फ 1.5–2.0 प्रतिशत पोषक तत्व ही लेती है। शेष 98–98.5 प्रतिशत पोषक तत्व वायु, जल एवं सौर ऊर्जा से प्राप्त किए जाते हैं।[74]

जेड.बी.एन.एफ. की मुख्य विशेषताएं निम्नलिखित हैं :

1. जीरो बजट : किसानों को बीजों, उर्वरकों और पौधे की रक्षा के रसायनों में निवेश की जरूरत नहीं पड़ती।
2. मुख्य यौगिकों (मैन कम्पाउंड्स) के रूप में गाय के गोबर एवं गोमूत्र का इस्तेमाल कर मिश्रण तैयार किया जाता है, जिससे बीजों (बीजामृत) और फसलों (जीवामृत) का उपचार किया जाता है।

---

[73] Babu, R. Yogananda. "Action Research Report on Subhash Palekar's Zero Budget Natural Farming", retrieved from: http://www.atimysore.gov.in/PDF/action_research1.pdf

[74] Subhash Palekar's home page on ZNBF; http://palekarzerobudgetspiritualfarming.org/zbnf.aspx#sthash.ixcQGTNQ.dpuf

3. जैविक अवशिष्टों से मल्चिंग की जाती है।
4. पौधे की रक्षा के लिए सिर्फ देसी और प्राकृतिक कीटनाशकों का इस्तेमाल किया जाता है।

जीरो बजट की खेती में घर में और खेत के आसपास आसानी से उपलब्ध प्रमुख घटकों से बने कीटनाशकों एवं उर्वरकों से बीजों, फसलों और मिट्टी के उपचार पर जोर दिया जाता है। बीजामृत में बीजों या पौधारोपण सामग्रियों का उपचार किया जाता है। बीजामृत पानी, गाय के गोबर, गोमूत्र, खेत की मिट्टी एवं चूना मिट्टी का एक काढ़ा है। प्लास्टिक के एक कनस्तर में 50 ग्राम चूना, 5 किलो गाय का गोबर, 5 लीटर गोमूत्र, थोड़ी सी मिट्टी और 5 लीटर पानी मिला कर बीजामृत तैयार किया जा सकता है। 12 घंटे के बाद बीज उपचार की यह सामग्री इस्तेमाल के लिए तैयार हो जाती है। 7 दिन तक यह मिश्रण बीजों की किस्म के आधार पर एक या दो बार इस्तेमाल किया जा सकता है।

बीजामृत अंकुरण के प्रारम्भिक चरण के दौरान नुकसानदायक मिट्टी–जनित एवं बीज–जनित रोगजनकों से फसलों की रक्षा करता है। बीजों की बुआई होने पर जीवामृत (जल, गाय के गोबर, गोमूत्र, गुड़, किसी भी दाल के आटे और खेत की मिट्टी का एक काढ़ा) से फसलों का उपचार किया जाता है। किसान द्वारा जीवामृत तैयार करने के लिए एक टैंक में 10 किलो गाय का गोबर, 10 लीटर गोमूत्र, 2 किलो गुड़, 2 किलो काला चना का आटा, थोड़ी सी मिट्टी 200 लीटर पानी में डाल कर दिन में दो बार मिश्रण को घुमाना होता है। दो दिनों के बाद यह मिश्रण इस्तेमाल के तैयार हो जाता है और इसका सात दिनों की अवधि तक इस्तेमाल किया जा सकता है। इस अवधि के बाद एक नया मिश्रण तैयार करना जरूरी है।

पन्द्रह दिनों या एक महीने में एक बार फसलों पर जीवामृत का छिड़काव किया जाता है। जीवामृत कोई उर्वरक या कीटनाशक नहीं, बल्कि मिट्टी में जैविक गतिविधि को बढ़ावा देने का एक उत्प्रेरक है। मिट्टी में बढ़ती जैविक गतिविधि पौधे के लिए पोषक तत्वों की उपलब्धता में वृद्धि करती है। चाहे बीजामृत हो या जीवामृत, जरसी या होल्स्टीन की संकर नस्ल की गायों का नहीं, बल्कि देसी गायों (स्थानीय भारतीय गाय नस्ल) का गोबर और मूत्र इस्तेमाल होता है। पालेकर के अनुसार संकर नस्ल की तुलना में देसी गाय का गोबर समृद्ध होता है। जेड.बी.एन.एफ. के तरीके में तीस एकड़ में खेती के लिए एक देसी गाय पर्याप्त होती है।

मिट्टी में पोषक तत्व की वृद्धि के लिए मल्चिंग की जाती है। मल्च में जैविक अवशिष्ट पदार्थ होता है, जो गाय के गोबर और गोमूत्र के साथ मिलाया जाता है । उसको एक गड्ढे में 14 दिनों से एक माह तक की अवधि के लिए सड़ाया और गलाया जाता है। यह गला जैविक पदार्थ खाद मिट्टी का रूप धारण करता है और इसे कम्पोस्ट कहा जाता है। मल्चिंग से जुताई कम करनी पड़ती है और श्रमिक की जरूरत भी कम होती है। कम्पोस्टिंग से बनी खाद मिट्टी न सिर्फ मिट्टी में पोषक तत्वों का संवर्धन करती है, बल्कि मिट्टी की जल धारण क्षमता भी बढ़ती है और जल के वाष्पीकरण एवं खरपतवार पर लगाम लगती है। सिंचाई की लागत घटती है और सिंचाई में उर्वरकों एवं जल का उपयोग बहुत कम होता है। मिट्टी में पोषक स्तरों के संवर्धन के उद्देश्य से किसानों को मिश्रित फसलों के उत्पादन और फसल–रोटेशन के लिए प्रेरित किया जाता है। मिश्रित फसलों

का उत्पादन फसल की पूरी नाकामी की स्थिति में एक बफर (प्रतिरोधक) का काम करता है और किसान की आय के स्रोत को व्यापक बनाता है, फसल का बदल–बदल कर लगाना (रोटेशन) मिट्टी में पोषक तत्वों की पुनःपूर्ति करता है एवं स्थानिक कीड़े–मकोड़ो की रोकथाम करता है।

नीचे लघुस्तरीय जैविक खेती के तरीकों (औद्योगिक जैविक खेती नहीं) और जीरो बजट की खेती की तकनीकों की एक तुलना पेश की जा रही है :

जैविक खेती	**प्राकृतिक खेती**
रासायनिक कीटनाशकों और उर्वरकों का इस्तेमाल नहीं	रासायनिक कीटनाशकों और उर्वरकों का इस्तेमाल नहीं
मुख्य फसल के बीच अन्य फसलों का उत्पादन और फसल–रोटेशन	मुख्य फसल के बीच अन्य फसलों का उत्पादन और फसल–रोटेशन एवं कृषि–वानिकी
खेत के पशु की खाद, तरल खाद और अन्य जैविक तैयारियां	मिट्टी में कोई जैविक पदार्थ मिलाने की जरूरत नहीं
यदा–कदा वानस्पतिक कीटनाशकों सहित बाहरी जैविक चीजों का सहारा लिया जा सकता है	सिर्फ खेत पर उपलब्ध चीजों पर निर्भरता
श्रम–प्रधान हो सकती है	लगातार संरक्षा फसलें (कवर क्रॉप्स) और मल्चिंग
जुताई (कम से कम पहली बार)	जुताई नहीं,
निराई	निराई नहीं
	मिट्टी का परिष्कार नहीं
	सिर्फ बुआई और फसल की कटाई

खेती में पेड़ों का महत्व

भारतीय किसानों को आज मिट्टी में भारी क्षरण (डिग्रेडेशन) एवं क्षति और पारिस्थितिकी तंत्र तथा अन्य प्राकृतिक संसाधनों के प्रति खतरों की चुनौतियों से निपटना होगा। इस संदर्भ में यह जांच बेहद जरूरी है कि खेती में पेड़ों की क्या भूमिका है और किस प्रकार वे आर्थिक रूप से फायदेमंद एवं उपयोगी हो सकते हैं।

भारतीय खेती प्रणाली में पेड़ एक अति–आवश्यक अंग हैं क्योंकि ये खाद्य पदार्थ, औषधियां, आय एवं कृषि की कच्ची सामग्रियां प्रदान करते हैं। भारतीय किसान पारम्परिक रूप से संभवतः 1,000 से भी अधिक सालों से वन खेती करते रहे हैं। हमारे किसान मिट्टी में क्षरण को रोकने और पारिस्थितिकी तंत्र के संरक्षण के लिए खेत की जमीन के किनारे पेड़ लगाते थे। पारिस्थितिकी तंत्र में स्थायित्व बनाए रखने में पेड़ों की भूमिका पारम्परिक ज्ञान पर आधारित है और यह तरीका देश भर में खेती की प्रणालियों में शामिल किया गया था।

चित्र–10 : पेड़ों का महत्व।
स्रोत : http://www.greenpop.org/wp-content/uploads/2011/11/New-Novmber-Why-trees-Main-image-Facts-3-.jpg

लेकिन, हरित क्रांति के अंग के रूप में प्रौद्योगिकीय प्रगति की दस्तक के साथ खेती में पेड़ों की भूमिका की उपेक्षा की गई और रासायनिक उर्वरकों एवं रासायनिक कीटनाशकों का भारी इस्तेमाल किया गया। यह उत्पादकता बढ़ाने के उद्देश्य से किया गया, पर अनुसंधान दर्शाता है कि औद्योगिक तरीकों की खेती की तकनीकों ने मिट्टी की गुणवत्ता बिगाड़ी, मिट्टी का अधःपतन किया और जल एवं वायु को प्रदूषित किया है।

पारम्परिक खेती प्रणालियों पर अध्ययन के अनुभव कहते हैं कि जब पेड़ों के साथ खेती की जाए तो उससे किसानों, विशेषकर जीवन– निर्वाही किसानों को कई फायदे होते हैं, जो पेड़ों के बड़े होने पर उनसे आर्थिक लाभ उठा सकते हैं। खेत की उसी भूमि पर एक साथ फसलें और पेड़ उगाने पर वे एक–दूसरे के साथ अंतर–क्रिया करते हैं, जो कई बार किसानों के लिए फायदेमंद होता हैं। इससे खेत की समग्र उत्पादकता बढ़ती है, साथ ही मिट्टी को मल्चिंग के लिए पत्ते और खाद एवं किसानों को जलाने की लकड़ियां मिलती हैं तथा मिट्टी के कटाव पर लगाम लगती है।

खेत पर विभिन्न रूपों में पेड़ उगाए जाते हैं। भारत में कुछ किसान बाड़–पंक्तियों के रूप में पेड़ उगाते हैं, जो खेत की रक्षा के लिए उसके चारों ओर एक बाड़ का रूप लेते हैं और तेज़ हवाएं रोकते हैं। कुछ बार किसान मिट्टी का कटाव रोकने के लिए अपने खेत की मेढ़ के चारों ओर पेड़ उगाते हैं। भारत के पश्चिमी समुद्री तट

के आसपास के किसान लवण–प्रभावित इलाकों में मिट्टी–सुधार के लिए एकासिया निलोटिका (Acacia Nilotica / बबूल), एकासिया टोरटिलिज (Acacia Tortilis / इजराइली बबूल), प्रोसोपस जुलिलोरा (Prosopus Juliflora / अंग्रेजी बबूल / विलायती बबूल) और यूकेलिप्टस (Eucalyptus) प्रजातियों के पेड़ उगाते हैं।

लेकिन, खेत–वानिकी पर अधिक ध्यान देना 1988 में राष्ट्रीय वन नीति के तहत वनों को लेकर सरकारी नीति में बदलावों का भी नतीजा है। इस नीति में वनों में वाणिज्यिक पौधारोपण पर रोक लगाई गई और कागज एवं लुगदी (पल्प) उद्योग से इसके बजाए किसानों से लकड़ी का स्रोत पाने को कहा गया। 1990 के दशक के आखिरी सालों में खेत–वानिकी ने जोर पकड़ना शुरू किया।[75] लेकिन, मुख्य रूप से बड़ी जोत के किसान खेत–वानिकी के प्रति आकर्षित हुए क्योंकि ये पेड़ उगाने के लिए अपनी जमीन का एक हिस्सा अलग रख सकते थे और खाद्य पदार्थ एवं सब्जियां उगाने के लिए बाकी हिस्से का उपयोग कर सकते थे। पर, यह छोटे एवं सीमांत किसानों के लिए टिकाऊ नहीं है क्योंकि पेड़ों को काटने से पहले इनके विकास में लंबा समय लगता है और कभी–कभी तो 7–10 साल तक लग जाते हैं। इसलिए, छोटे एवं सीमांत किसान कृषि–वानिकी अपनाने में सक्षम नहीं होते। पर, वे अपने खेत के चारों ओर पेड़ जरूर उगा सकते हैं, जो छाया, खाद के लिए कचरा, उनके खेत के लिए नाइट्रोजन की आपूर्ति (फिक्सेशन) के अलावा कुछ सालों में एक बार आकर्षक वित्तीय लाभ देते हैं।

पंजाब और हरियाणा में लोकप्रिय पहाड़ी पीपल के पेड़

पंजाब एवं हरियाणा में कई बड़े किसानों ने गेहूं एवं धान की पारम्परिक फसलों का उत्पादन छोड़ कर पूर्वजक (क्लोन्ड) पोपलर पेड़ों के पौधारोपण को अपनाया है। पर, अधिकतर किसान खेत या नहर की मेढ़ पर यह पेड़ उगाते हैं। प्लाईवुड निर्माता इकाइयों, कागज निर्माण उद्योगों और फर्नीचर इकाइयों में वृद्धि से लकड़ी की मांग बढ़ी है, जिससे पोपलर पेड़ों की कीमतों में तेजी आई है। निर्माण कार्यों के लिए पोपलर पेड़ों का खंभों के रूप में और प्लाईवुड में भराई सामग्री (फीलर) के रूप में और कागज बनाने में लुगदी के रूप में उपयोग किया जाता है। कृषि–वानिकी को अपनाना किसानों के लिए अत्यंत फायदेमंद रहा है क्योंकि इसमें न्यूनतम लागत आती है, इस लकड़ी की बाजार में मांग है और इस पेड़ की फसल की नाकामी की संभावना कम है। एक किसान पांच साल में एक एकड़ में कृषि–वानिकी से 8–10 लाख रु. कमा लेता है। होशियारपुर (पंजाब) और यमुनानगर (हरियाणा) जैसे जिलों में 70–80 प्रतिशत किसान कृषि वानिकी में पूरी तरह सक्रिय

चित्र–11 : उत्तर भारत में पोपलर वृक्ष–आधारित कृषि–वानिकी। स्रोत : http://wca2014.org/poplar-creating-an-evergreen-revolution-for-food-and-wood-security-in-north-india/#.VKJCIsAA

[75] "Forest to farms", Down to Earth, 31 July 2014, http://www.downtoearth.org.in/content/forest-farms

हैं। इससे इन क्षेत्रों की जमीन की प्राकृतिक तस्वीर पूरी तरह बदल गई है और इन दोनों राज्यों का प्लाईवुड बाजार में 30–40 प्रतिशत हिस्से पर कब्जा है। किसान पोपलर पेड़ों के साथ गेहूं, मक्का एवं गन्ने की बीच की फसल का भी उत्पादन करते हैं। इससे उन्हें पहले दो सालों में फसलों की साधारण उपज से आय का विकल्प मिलता है और इसके बाद तीसरे साल से पेड़ों की कटाई करते हैं।[76]

तमिलनाडु के मदुरई में बांस की खेती

मदुरई में मजदूरों की भारी कमी, कृषि में बढ़ती लागत और उर्वरकों एवं कीटनाशकों की बढ़ती कीमत के चलते कई किसानों ने अपने खेतों, बंजर जमीनों और गैर–वनीय इलाकों में बांस की खेती का विकल्प चुना है। बांस की खेती के लिए अधिक मानव शक्ति की जरूरत नहीं पड़ती और लंबी अवधि तक लगातार उपज मिलती है। बांस एक दीर्घकालिक फसल है और प्रारम्भिक सालों में रखरखाव महत्वपूर्ण होता है, इसलिए किसान राजस्व हानि की भरपाई के लिए पहले तीन सालों में बांस के पौधों के बीच दालों की फसल उगाते हैं। बांस 45 प्रतिशत कार्बन डाइऑक्साइड सोखता है और 30 प्रतिशत ऑक्सीजन छोड़ता है, इसलिए यह अत्यंत पर्यावरण–हितैषी है। इससे प्रारम्भिक सालों में प्रति एकड़ 50,000 रु. का मुनाफा होता है और इसके बाद आगामी 30 सालों तक लगातार मुनाफा मिलता रहता है। बांस जमीन को उर्वरक बना कर मिट्टी की गुणवत्ता में सुधार लाता है। खाद बनाने और मशरूम की खेती के लिए भी सूखे पत्तों का इस्तेमाल किया जाता है। नियमित वाणिज्यिक उपयोगों के अलावा कागज, हस्त–कलाकृतियों और माचिस के तिल्ली उद्योग में भी बांस उत्पादों का उपयोग किया जाता है।[77]

नाइट्रोजन फिक्सिंग पेड़ (एन.एफ.टी.)

नाइट्रोजन फिक्सिंग पेड़ (एन.एफ.टी.) यानी नाइट्रोजन निश्चित करने वाले पेड़ अक्सर टिकाऊ कृषि–वानिकी प्रणालियों के प्रमुख अंग माने जाते हैं। एन.एफ.टी. द्वारा मिट्टी में नाइट्रोजन फिक्स करने पर पेड़ों एवं फसलों के उत्पादन और मिट्टी के उपजाऊपन में सुधार आता है। यदि उपज अधिक हो तो पेड़ों से फलियों का संग्रहण आर्थिक रूप से फायदेमंद होता है। ये प्रजातियां न सिर्फ चरागाह की उत्पादकता में वृद्धि करती है, बल्कि मिट्टी के शारीरिक गुणों, जैविक पदार्थ एवं मिट्टी के संरक्षण, नमी और पोषक तत्वों की रिसाइक्लिंग को बढ़ावा देती है। दक्षिणी भारत के अनेक हिस्सों में 3–4 साल पुराने पेड़ों को काट कर उनका ग्रामीण इलाकों में मकानों के खंभों के रूप में उपयोग किया जाता है। इस प्रकार, ग्रामीण इलाकों में भी इन पेड़ों की अच्छी कीमत मिलती है। ये प्रजातियां बहुत कम शाखाओं में सीधे उगती हैं, इसलिए खेत पर कतारों में रोपे गए पेड़ सूर्य की रोशनी एवं नमी के लिए प्रतिस्पर्धा किए बिना फसलों को तेज़ हवाओं से बचाते हैं।

---

[76] Krar, Parshant. "How farmers in Haryana & Punjab are earning Rs 8-10 lakh per acre in agro-forestry", The Economic Times, November, 2012. Retrieved from: http://articles.economictimes.indiatimes.com/2012-11-11/news/35034149_1_indian-farmers-crop-marginal-farmers

[77] "Manpower shortage forces farmers to switch to bamboo", The Times of India, January, 2012. Retrieved from: http://timesofindia.indiatimes.com/city/madurai/Manpower-shortage-forces-farmers-to-switch-to-bamboo/articleshow/11584543.cms

नाइट्रोजन फिक्सिंग गैर–दाल प्रजाति वाले पेड़

कैजुरिना (Casuarinaceae) वर्ग (जंगलीसारु/विलायती सारु): ओड़ीशा, आंध्र प्रदेश, कर्नाटक एवं तमिलनाडु के किसानों ने कृषि–वानिकी और खेत–वानिकी में एक बड़े स्तर पर कैजुरिना की खेती को अपनाया है।[78] इस पेड़ की प्रजातियों की पसंद का मुख्य कारण है कि ये वार्षिक फसलों की तुलना में अधिक फायदेमंद हैं। इसमें कम पानी की जरूरत पड़ती है, सूखा–सहनशीलता है, आसानी से प्रबंधन होता है और रोपण एवं रखरखाव के लिए न्यूनतम श्रमिकों की जरूरत होती है। कैजुरिना के खंभों का मचान बनाने, झोपड़ों के केंद्र में खंभा लगाने, छत बनाने और खदान की टेक लगाने में भी उपयोग किया जाता है। जड़ की ग्रंथियों में एक्टिनोरहिजाल्सिम्बिओंट (Actinorhizalsymbiont) और फ्रैंकिया (Frankia) होते हैं, जो कैजुरिना को प्रतिवर्ष 40–80 किलो की दर से वायुमंडलीय नाइट्रोजन को फिक्स करने में समक्ष बनाते हैं।

चित्र–12 : कैजुरिना पेड़।
स्रोत : http://upload.wikimedia.org/wikipedia/commons/f/fa/Casuarina_equisetifolia_0004.jpg

नाइट्रोजन फिक्सिंग दाल–प्रजाति वाले पेड़

फैबिसियाई (Fabaceae) (तरवार) : तेजी से उगने वाले इस पेड़ में असाधारण रूप से उच्च ग्रंथीकरण होता है, जो वायुमंडलीय नाइट्रोजन की उच्च मात्रा को निश्चित करने में मदद करता है और इस प्रकार मिट्टी में सुधार एवं पेड़ों का शीघ्र विकास होता है। इसकी मुख्य रूप से पान के झाड़ के आरोही के रूप में खेती की जाती है।

ग्लीरिसिडिया सेपियम (Gliricidia Sepium) (मैद्रे पेड़) : ग्लीरिसिडिया एक असरदार जीवंत बाड़ बनाता है। वर्षा के मौसम में समय–समय पर एक या दो माह में एक बार इन बाड़ों को कतरने से चारे या हरित खाद के लिए एक बड़ी मात्रा में पत्ते–पत्तियां मिलते हैं। कुछ किसानों ने अकेले सिर्फ ग्लीरिसिडिया की हरित खाद डाल कर चावल की अपनी उपज में 10 प्रतिशत की वृद्धि की है।

पोंगामिया पिन्नाटा (Pongamia Pinnata) (करंज) : यह एक सदाबहार पेड़ है, जिससे महत्वपूर्ण वसायुक्त तेल का उत्पादन होता है और उसका चिकनाइयों एवं घरेलू लैम्पों में इस्तेमाल किया जाता है। यह आम तौर पर नदी किनारों पर पाया जाता है और छाया एवं खाद के लिए इसे खेतों में उगाया जाता है। बीज से निकाले जाने वाले पोंगाम तेल का चिकित्सीय उद्देश्यों में इस्तेमाल किया जाता है।

मिमोसासियाई (Mimosaceae) (कत्था, खैर) : अपने शीघ्र विकास, नाइट्रोजन फिक्सिंग क्षमता, अनुपजाऊ, अम्लीय, क्षारीय, लवणीय या मौसमी जलजमाव वाली मिट्टी के प्रति सहनशीलता एवं शुष्क मौसम और

[78] "Casuarina plantations offer multiple benefits", *The Hindu*, May 11, 2012. Retrieved from: http://www.thehindu.com/todays-paper/tp-national/tp-andhrapradesh/casuarina-plantations-offer-multiple-benefits/article3407049.ece

600–1,000 मिमी. वर्षा के प्रति सहनशीलता के कारण यह अर्द्ध–शुष्क क्षेत्रों में कृषि–वानिकी के लिए एक क्षमतावान पेड़ प्रजाति है। इसकी अंदरूनी लकड़ी आकर्षक फर्नीचर, खराद, नक्काशी के अलावा निर्माण कार्यों के लिए भी उपयोगी है। यह लकड़ी ईंधन एवं कठ–कोयले के लिए मुफीद है,। यह पेड़ कागज की लुगदी का एक अच्छा स्रोत है और बड़ी मात्रा में कूड़ा–कचरा पैदा करता है, जिससे मिट्टी समृद्ध होती है। यह पेड़ प्रति हेक्टेयर लगभग 207 किलो वायुमंडलीय नाइट्रोजन की फिक्सिंग में भी सक्षम है।

पेड़ों के फायदे

- खेती के साथ उपयोगी पेड़ उगाने पर वे भूमि के अधिकतम इस्तेमाल का प्रबंधन करते हैं और मिट्टी की बेहतर रक्षा एवं उत्पादन के टिकाऊ तरीके के लिए भूमि के प्राकृतिक रूप को निखारते हैं।
- लोग आमदनी, खाद्य पदार्थों, पोषण और ईंधन एवं चारा जैसी उपयोगी चीजों के लिए पेड़ों पर आश्रित रहते हैं।
- खेती–योग्य भूमि पर पेड़ उगाने से फसल की नाकामी और खाद्य असुरक्षा के दौरान आय का एक अच्छा स्रोत मिलता है। पेड़ उगाने से छोटे किसानों को सर्वाधिक फायदा होता है क्योंकि बुरे समय में उन्हें आय का एक निश्चित स्रोत मिलता है।
- पेड़ किसान की विविध जरूरतें पूरी करते हैं, उत्पादन को बनाए रखते हैं और पारिस्थितिकी तंत्र की रक्षा करते हैं।
- पेड़ अनुत्पादनशील या अकल्पनीय आपात स्थितियों में वित्तीय मदद करते हैं।
- पेड़ आजीविका सृजन करते हैं और कृषि–वानिकी आधारित उद्योगों के लिए मददगार होते हैं।
- पेड़ कार्बन डाइऑक्साइट सोख कर जलवायु परिवर्तन का प्रतिकूल प्रभाव कम करते हैं।

नाइट्रोजन फिक्सिंग पेड़। स्रोत : http://heart-institute.org/wp-content/uploads/2013/10/heart-alibizia.jpg

खेती में गायों और अन्य पशुओं का महत्व

हरित क्रांति की प्रौद्योगिकियों को अपनाने से पहले गायों, सांडों, बकरियों, भैंसों और अन्य पालतू पशुओं के बिना भारतीय खेती की कल्पना नहीं की जा सकती थी। कई पालतू पशु किसान के मित्र होते थे। सांड, भैंसे और यहां तक कि ऊंट का खेती करने और जोतने में उपयोग किया जाता था। गायों, बकरियों और भैंसों का उनसे दूध एवं गोबर पाने के लिए उपयोग किया जाता था, जो किसानों के लिए आय का एक अतिरिक्त स्रोत था। पशु–गोबर, विशेषकर गाय का गोबर खेती में उपयोग होने वाला मुख्य खाद था। लेकिन, खेती के मशीनीकरण एवं हरित क्रांति के दौरान रासायनिक उर्वरकों के भारी इस्तेमाल के साथ इन पालतू पशुओं की भूमिका बहुत घट गई और भारत में मवेशियों की आबादी में गिरावट आना शुरू हुआ। रासायनिक उर्वरकों एवं कीटनाशकों के प्रतिकूल प्रभाव प्रकाश में आने और रसायन–मुक्त खाद्य पदार्थों की मांग बढ़ने के साथ टिकाऊ खेती के पक्षधर कई किसान एवं समूह इन पशुओं के महत्व, विशेषकर खेती में गाय की प्रमुख भूमिका को लेकर पुनर्विचार कर रहे हैं। इस प्रकार, यह समझना बहुत जरूरी कि है कि किन वजहों से गायों एवं अन्य पालतू पशुओं को अभी भी भारतीय खेती का मुख्य सहारा और किसानों का मित्र माना जा रहा है।

गाय को भारतीय संस्कृति में पवित्र माना जाता है और उनकी लाभदायकता के लिए उन्हें आदर दिया जाता है। ये जीवन–निर्वाही खेती में एक प्रमुख भूमिका निभाती है। गायें न सिर्फ खाद्य पदार्थ, बल्कि खेती के लिए गोबर एवं मूत्र के अलावा पशु–शक्ति भी प्रदान करती हैं।

अनेक किसानों के लिए अपने छोटे खेत से आय सृजन के अलावा पशुधन आय का एक अतिरिक्त स्रोत प्रदान करता है। गायों, भैसों और बकरियों के मालिक किसान अपने परिवार के सहारे के लिए उनका दूध और दुग्ध उत्पाद बेचते हैं। कई किसानों ने पशु–गोबर के खाद एवं गाय के शुष्क खाद कंडों (गोयठा) की बिक्री का प्रयास किया है, जो क्रमशः जैविक उर्वरक और ईंधन के समृद्ध स्रोत हैं। मवेशी आरक्षित पूंजी का एक रूप भी है और अच्छे वक्त में आरक्षित की गई यह पूंजी आड़े वक्त में तब उपयोग में आती है, जब फसल खराब हो गई हो या किसान का परिवार विवाह या मेडिकल आपात स्थितियों की लागत जैसी हालत में बड़े खर्चों की समस्या का सामना कर रहा होता है।

बॉयोगैस के उत्पादन में मवेशियों, विशेषकर गाय के गोबर का इस्तेमाल किया जाता है। अनेक भारतीय गांवों में बॉयोगैस के उत्पादन का सिलसिला तेजी से बढ़ रहा है। जीवाश्म ईंधन एवं लकड़ी जलाने से जीवाश्म ईंधन की गैर–नवीकरणीयता और ग्रीनहाउस गैसों के उत्सर्जन के बारे में जानकारी मिलने के बाद भारतीय ग्रामीण परिवारों को ऊर्जा के सस्ते स्रोतों के उपयोग को बढ़ावा दिया गया है, जिनका खाना पकाने के अलावा बिजली दोनों दृष्टि से उपयोग किया जा सकता है। कर्नाटक के अनेक ग्रामीण इलाकों[79] के परिवारों

[79] "From cow dung to biogas in Karnataka, India". Retrieved from: https://www.myclimate.org/fileadmin/myc/klimaschutzprojekte/indien-7149/klimaschutzprojekt-indien-7149-project-story.pdf

में बॉयोगैस संयंत्रों के जरिए ईंधन की जरूरतों की पूर्ति की जाती है और मकानों में परिवार के आकार के मुताबिक बॉयोडाइजेस्टर्स लगाए गए हैं, जिनसे परिवार के रसोईघर में बॉयोगैस की आपूर्ति होती है। जहां तक बॉयोगैस से बिजली उत्पादन का संबंध है, बेंगलुरू स्थित यूनिवर्सिटी ऑफ एग्रीकल्चरल साइंसेज (यू.ए.एस.)[80] अपने परिसर में एक बॉयोगैस संयंत्र से उत्पादित बिजली का इस्तेमाल कर अपने बिजली बिल में प्रतिमाह लगभग 50,000 रु. की बचत कर रहा है। बॉयोगैस संयंत्र के अवशिष्ट का खेत में खाद के रूप में इस्तेमाल किया जाता है। यू.ए.एस. का बॉयोगैस संयंत्र प्रतिदिन तीन टन जैविक खाद का उत्पादन करता है।

भारतीय खेती के व्यवसायीयकरण ने कई किसानों को अपने खेत में टिलर्स या टैक्टर्स के इस्तेमाल के लिए विवश किया है। लेकिन, खेती की अधिकतर जोत मशीनों के लिए बहुत छोटी जोत होती हैं। दूसरी बात, कई किसान बम्बर फसलें पाने की आशा में रासायनिक उर्वरकों और कीटनाशकों का उपयोग करने लगे हैं। लेकिन, पिछले कुछ सालों में खेती के व्यवसायीयकरण और मशीनीकरण ने किसानों की पूंजी एवं स्वास्थ्य पर डाका डाल कर लूटा है। हरित क्रांति के लाभ, विशेषकर छोटे एवं सीमांत किसानों को लंबे समय तक नहीं मिलते। इस प्रवत्ति का नतीजा उत्पादन की इतनी बढ़ती लागत के रूप में सामने आया है कि कई किसान अब खेती के देसी तरीकों की ओर लौट रहे हैं। बैलों से खेतों में जुताई अब कम लागत की जुताई का विकल्प है। रासायनिक उर्वरकों एवं कीटनाशकों से स्वास्थ्य एवं पर्यावरण संबंधी समस्याएं होने के चलते गाय का गोबर एवं मूत्र का खाद के रूप में उपयोग करना समय की मांग है। अनुसंधानकर्ताओं ने पाया है कि खाद के रूप में गाय का गोबर एवं मूत्र मिट्टी में जैविक पोषक तत्वों का भरण करते हैं और अधिक लंबी अवधि तक खेती में उच्च उत्पादकता के टिकाऊपन में मददगार होते हैं।

इस पुस्तिका के विभिन्न अध्यायों में पारिस्थितिकीय खेती के लिए अपनाए जा रहे विभिन्न तौर तरीकों का जगह–जगह विस्तार से उल्लेख किया गया है। लेकिन, अगले उप–भागों में जैव–उर्वरकों के रूप में गाय के गोबर एवं मूत्र के बारे में गहन शोध पेश किया गया है। हमने जैव–उर्वरक एवं जैव–कीटनाशक पर अलग अध्यायों के तहत अन्य बातें भी बतलाई हैं।

उर्वरक के रूप में गाय का गोबर एवं अन्य पशुओं का गोबर

गाय के गोबर और अन्य पशुओं के गोबर को खाद के रूप में सीधे इस्तेमाल नहीं किया जा सकता क्योंकि यह नाइट्रोजन में अत्यंत समृद्ध नहीं होता है और उसका उच्च अमोनिया पदार्थ पौधों को भी नष्ट कर सकता है। इसलिए, गाय के गोबर एवं अन्य पशुओं के गोबर के खाद को पहले कम्पोस्ट किया जाता है और फिर खेत पर उर्वरक के रूप में इस्तेमाल किया जाता है। पशुओं के गोबर की कम्पोस्टिंग से न सिर्फ अमोनिया गैस, ई. कोली जैसे रोगजनकों और खरपतवार के बीजों को हटा देती है, बल्कि मिट्टी में बड़ी मात्रा में जैविक पदार्थ भी शामिल होता है।[81] मिट्टी में इस कम्पोस्ट को मिलाने से उसकी जलधारण क्षमता संवर्धित होती है, जिसका

[80] "UAS-B sets up biogas plant on its campus to save power", The Hindu, Bangalore, 21 May 2012; http://www.thehindu.com/todays-paper/tp-national/tp-karnataka/uasb-sets-up-biogas-plant-on-its-campus-to-save-power/article3440559.ece

[81] Phipps, Nikki."Cow Dung Fertilizer: Learn The Benefits Of Cow Manure Compost", retrieved from Gardening Knowhow, online at: http://www.gardeningknowhow.com/composting/manures/cow-manure-compost.htm

मतलब यह है कि खेत में कम बार जल की सिंचाई की जरूरत पड़ेगी क्योंकि जरूरत के अनुसार जड़ें अतिरिक्त पानी का उपयोग करती हैं। इसके अलावा, यह कड़क मिट्टी को तोड़ती है और मिट्टी में वायु–संचारण का संवर्धन करती है।

कम्पोस्ट गोबर खाद में लाभदायक बैक्टीरिया होते हैं, जो पोषक तत्वों को आसानी से पहुंच योग्य रूपी बनाते हैं, जो धीरे–धीरे पौधे की कोमल जड़ों में पहुंच पाते हैं। गाय का गोबर और अन्य पशुओं के गोबर का कम्पोस्ट या खाद ग्रीनहाउस गैसों (कार्बन डाइऑक्साइड, मिथैन, नाइट्रस ऑक्साइड एवं अन्य ज्वलनशील गैसें, जिन्हें ग्रीनहाउस गैस कहा जाता है और अक्सर उन्हें संक्षेप में जी.एच.जी. का नाम दिया गया है) के उत्सर्जन में एक–तिहाई कमी लाते हैं और उसे पारिस्थितिकी–हितैषी बनाते हैं।

किस प्रकार गाय के गोबर का कम्पोस्ट बनाएं

खाद बनाने के लिए एक पात्र (डिब्बे) में सब्जियों की बची–खुची सामग्री, बगीचे के मलबे आदि से प्राप्त जैविक पदार्थों के अलावा घास–फूस या सूखी घास के साथ गाय का गोबर एवं थोड़ी मात्रा में चूना मिट्टी या राख मिलाएं। इस पात्र के आकार का बहुत महत्व है। कम्पोस्टिंग के लिए कुछ मात्रा में उष्मा जरूरी है, जो छोटे पात्र में पर्याप्त रूप से पैदा नहीं हो सकती। लेकिन, अधिक बड़े डिब्बे भी पर्याप्त वायु नहीं पा सकते। इसके अलावा, अच्छा कम्पोस्ट बनाने के लिए कम्पोस्ट को बार–बार पलटना आवश्यक है।

जैव–उर्वरक के रूप में गोमूत्र का महत्व[82]

भारत में गोमूत्र का एक औषधि के अलावा एक उर्वरक के रूप में इस्तेमाल वैदिक एवं पूर्व–वैदिक काल से चला आ रहा है। अपने अपार रोगोपचारक महत्व के चलते गोमूत्र का एक औषधि के रूप में व्यापक रूप से संदर्भ दिया गया है।[83]

गोमूत्र का उपयोग न सिर्फ छोटी–मोटी बीमारियों के लिए एक औषधि के रूप में किया जाता है, बल्कि उसके खेती में विविध उपयोग हैं। गोमूत्र पर प्रयोगशाला के अनुसंधान ने दर्शाया है कि इसमें सोडियम, नाइट्रोजन, सल्फर और विटामिन ए. बी. सी. डी. एवं ई. होता है। गोमूत्र मैंगनीज, लौह, सिलिकॉन, क्लोराइन, मैग्नेशियम, कैल्शियम साल्ट, फोस्फेट, लैक्टोज एवं कार्बोलिक एसिड जैसे अनेक खनिजों की दृष्टि से समृद्ध है।[84]

गोमूत्र विषैला बहिस्राव नहीं है। इसमें मुख्यतः 95 प्रतिशत पानी, 2.5 प्रतिशत यूरिया, शेष 2.5 प्रतिशत विभिन्न खनिजों, हारमोन्स, नमक एवं इंजाइम्स का एक मिश्रण होता है।[85]

---

[82] "Cow urine is new organic pesticide", Deccan Chronicle, 6 October 2014; http://www.deccanchronicle.com/141006/nation-current-affairs/article/cow-urine-new-organic-pesticide

[83] Mohanty, Ipsita et al. "Diversified uses of cow urine", International Journal of Pharmacy and Pharmaceutical Sciences, ISSN-0975-1491, Vol. 6, Issue 3, 2014. Pp 20-22. Retrieved from: http://www.ijppsjournal.com/Vol6Issue3/9051.pdf

[84] Ibid.

[85] Ibid.

खेती में गोमूत्र का उपयोग

टिकाऊ खेती के क्षेत्र में गोमूत्र किसानों के लिए लाभदायक है क्योकि इसमें विविध किस्म के पोषक तत्व होते हैं, जिनका तरल उर्वरक के रूप में इस्तेमाल किया जा सकता है। गोमूत्र के नानाविध उपयोगों के बारे में अनेक प्राचीन भारतीय ग्रंथों में बतलाया गया है। जैविक खेती में गाय के गोबर, दूध और अन्य जड़ी–बूटियों के घटकों के साथ गोमूत्र का एक जैव–कीटनाशक के रूप में इस्तेमाल किया जाना चाहिए।

विभिन्न रूपों में गोमूत्र का इस्तेमाल मिट्टी में लघुजीवों के अभाव में सुधार लाता है और फसलों के विकास में सवंर्धन करता है। गोमूत्र के इस्तेमालकर्ता किसानों ने पाया है कि अगली फसल की पैदावार में भी अवशिष्ट का प्रभाव बना रहता है। गोमूत्र मिट्टी के रूप में सुधार में मदद करता है और मिट्टी में केंचुओं के पनपने के लिए एक अनूकूल वातावरण बनाता है। गोमूत्र विभिन्न फसलों के विकास को बढ़ावा देने के रूप में भी इस्तेमाल किया जा सकता है।

आंध्र प्रदेश के कृष्णा जिले के एक किसान ने खाद के रूप में सिर्फ गाय के गोबर एवं गोमूत्र का इस्तेमाल कर धान की खेती की और वह साल–दर–साल बहुत अच्छी फसल प्राप्त कर रहा है। जीरो बजट की प्राकृतिक खेती (जेड.बी.एन.एफ.) के तरीके से उसने सिर्फ जीवामृत (पानी के साथ गाय के गोबर, गोमूत्र, गुड़, दलहन का आटा मिला कर तैयार एक मिश्रण) का इस्तेमाल कर खेती की और पाया कि उसके खेत में मिट्टी की गुणवत्ता बहुत बढ़ने के अलावा रसायन एवं कीटनाशक–मुक्त धान की अच्छी फसल प्राप्त हुई। जेड.बी.एन. एफ. पर अमल के दौरान उसने पाया कि जीवामृत के इस्तेमाल से पौधे में ''शीट ब्लाइट'' (sheet blight) एवं ''राइस ब्लाइट'' (rice blast) जैसी बीमारियों की रोकथाम हुई और पत्ते की तह में कीटों से धान के पौधों की रक्षा की।[86]

खेत के कूड़े–कचरे और गौशाला के अवशिष्ट का पूरा उपयोग करते हुए एक किसान आसानी से अपने खेत में मिट्टी की गुणवत्ता सुधार सका और अच्छी–खासी फसल पैदा कर सकता है। कम्पोस्ट गड्ढे में गोमूत्र मिला कर एक किसान लघुपोषक तत्वों के उच्च सकेंद्रण के साथ बेहतर गुणवत्ता का वर्मीकम्पोस्ट प्राप्त कर सकता है। गोमूत्र की मदद से वर्मीकम्पोस्ट का इस्तेमाल उपज में महत्वपूर्ण सुधार लाता है।[87]

जैव–कीटनाशक एवं जैव–संवर्धक के रूप में गोमूत्र

गाय के पांच उत्पादों– दूध, दही, घी, गोमूत्र एवं गोबर से बने पंचकाव्या का खेती के कार्यों में उर्वरक एवं कीटनाशक के रूप में भी इस्तेमाल किया जाता है। अध्ययन दर्शाते हैं कि एक अच्छे जैविक खाद होने के साथ–साथ गोमूत्र को अकेले या पौधों के अन्य जैविक कीटनाशकों के साथ मिला कर कीड़े–मकोड़ों का एक असरदार नियंत्रक एवं इल्लीनाशक के रूप में इस्तेमाल किया जा सकता है।[88]

---

[86] "Farmer cultivates paddy with cow urine, dung", The Hindu, December 13, 2012. Retrieved from: http://www.thehindu.com/todays-paper/tp-in-school/farmer-cultivates-paddy-with-cow-urine-dung/article4193671.ece

[87] "Bioactivities of Cow Urine and its Arka (Distillate) for Utility in Agriculture and Health", Love for Cow Trust. Retrieved from: http://www.love4cow.com/bioactivitiesofcowurine.htm

[88] Mohanty, Ipsita et al. "Diversified uses of cow urine", International Journal of Pharmacy and Pharmaceutical Sciences, ISSN-0975-1491, Vol. 6, Issue 3, 2014. Pp 20-22. Retrieved from: http://www.ijppsjournal.com/Vol6Issue3/9051.pdf

अध्ययनों में दावा किया गया है कि किसान एक कीटनाशक के रूप में गोमूत्र के साथ नीम के सत्व के साथ मेल से दोतरफा लाभ उठा सकता है। नीम कीटों को दूर करता है, जबकि गोमूत्र उस यूरिया का एक समृद्ध स्रोत है, जो मिट्टी के उपजाऊन में संवर्धन के लिए एक प्रमुख पोषक तत्व है। इससे खेती की लागत भी बहुत कम होती है।

गायें और अन्य पालतू मवेशी भारतीय खेती में अभी भी बहुत महत्वपूर्ण हैं क्योंकि ये खेती के लिए सस्ते एवं आसानी से उपलब्ध जैविक खाद एवं उर्वरकों के अलावा पशु–शक्ति प्रदान करते हैं। दूध और दुग्ध–उत्पाद किसानों की आय का एक अतिरिक्त स्रोत बनता है, जिससे उनकी खाद्य एवं आय सुरक्षा सुनिश्चित होती है।

नोट : जैविक खाद एवं जैविक कीटनाशक पर अध्याय में विभिन्न जैविक खाद एवं जैविक कीटनाशक, उनके घटक एवं तैयारियों के तरीकों और इस्तेमाल के बारे में बतलाया गया है। कृपया विस्तृत विवरण के लिए उन्हें पढ़ें।

गाय का ताजा मूत्र। स्रोत : http://i3.mirror.co.uk/incoming/article3017749.ece/alternates/s1023/Fresh-Cow-Urine.jpg

जैविक खाद

खाद एक पदार्थ है, जो पौधो के विकास के लिए आवश्यक पोषक–तत्व प्रदान करता है। इसकी मिडिल इंगलिश के शब्द– ''मैन्यूरेन'' से उत्पति हुई है, जिसका मतलब ''भूमि पर खेती करना''[89] है। खाद कार्बन एवं अन्य घटक प्रदान कर मिट्टी के उपजाऊपन में योगदान देता है, जिससे खाद मिट्टी, जैविक गतिविधि और मिट्टी की शारीरिक संरचना पर प्रभाव पड़ता है। खाद को जैविक एवं गैर–जैविक के रूप में वर्गीकृत किया जा सकता है। जैविक खाद में मुख्यतः फसल के अवशिष्ट, मवेशी का गोबर और शहरी एवं ग्रामीण इलाकों के मल के नाले (सीवर) का कचरा जैसे जैविक अपशिष्ट आते हैं। गैर–जैविक खाद में रासायनिक उर्वरक आते हैं।

चित्र–13 : वायु–संचारण के लिए कम्पोस्ट को उलटती–पलटती एक महिला। स्रोत : खेती में काम करने वाली महिलाओं के लिए पर्यावरण–हितैषी प्रौद्योगिकी।
स्रोत : http://collections.infocollections.org/ukedu/collect/ukedu/index/assoc/ii01ee/p068a.gif

पिछले कुछ दशकों से भारत में गैर–जैविक खाद के इस्तेमाल में भारी वृद्धि हुई है। इसके अत्यधिक इस्तेमाल ने वनस्पतियों एवं जीव–जंतुओं पर विपरीत असर डाला है, मिट्टी में क्षारीय सामग्री बढ़ाई है और खेत की ऊपरी मिट्टी का भारी कटाव किया है। खेती को अधिक महंगा बनाने के अलावा इसने मिट्टी के उपजाऊपन को लूटा है। इन उर्वरकों का उपजाऊपन बढ़ाने के प्रयास में इस्तेमाल किया जाता है, पर इससे फसल को काफी नुकसान होता है। इस महंगे चक्र ने एक बड़ी संख्या में ग्रामीण किसानों को आत्महत्या के लिए विवश किया है। ये रासायनिक उर्वरक कभी–कभी बारिश में जलनिकासी नालियों के जरिए भी बह जाते हैं और भूमिगत पानी या समुद्र में प्रवेश करते हैं, जिससे समुद्री जीवन पर विपरीत असर पड़ता है। ये उर्वरक आनुवंशिक विकार एवं कैंसर जैसी बीमारियां का कारण बनते हैं। वर्तमान में गैर–जैविक खादों के नुकसानदायक प्रभावों पर बहुत–सारा अनुसंधान हो रहा है और वैज्ञानिकों ने पारम्परिक एवं जैविक उर्वरकों के इस्तेमाल की ओर लौटने की सिफारिश की है।

जैविक खाद में मवेशियों का अवशिष्ट, फसल के अवशिष्ट और मल के नाले का अवशिष्ट होता है। इसमें मिट्टी और पौधों के लिए आवश्यक, सीमित मात्रा में, सभी पोषक तत्व होते हैं। जैविक खाद मिट्टी की पानी रोकने की क्षमता को बढ़ाता है और इस प्रकार, यह पौधों में पोषक तत्व उपलब्ध कराता है। इसके विपरीत, जल–घुलनशील रासायनिक उर्वरकों के पोषक तत्व आम तौर पर वायुमंडल में खो जाते हैं। जैविक खाद जैविक गतिविधि में तेजी लाता है और मिट्टी की गहराइयों में बने पोषक तत्व उपलब्ध कराता है। इसके अलावा, जैविक खाद मिट्टी के रूप एवं शारीरिक प्रकृति में भी सुधार लाता है, जबकि उसकी वाष्पीकरण दरों

[89] "Manure Salts". Retrieved from Reference.com. online at: http://www.reference.com/browse/manure+salts

में कमी लाता है। स्वास्थ्य के दृष्टिकोण से जैविक खाद में कोई भी रसायन नहीं होता, इसलिए मानव स्वास्थ्य को कोई हानि नहीं पहुंचती।

कम्पोस्ट

कम्पोस्ट जैविक खाद का एक रूप है, जिसमें अपघटित (डिकम्पोज्ड) जैविक फसल के अवशिष्ट होते हैं। फसल के अवशिष्ट का ढेर लगना, उसमें नमी आना, उसमें हवा लगाने के लिए यदा–कदा उसे पलटना और उसको आंशिक रूप से अपघटित (आम तौर पर एक खड्डे में) होने देने की प्रक्रिया को कम्पोस्ट कहा जाता है। मिट्टी पर सीधे फसल के अवशिष्ट के इस्तेमाल से नाइट्रोजन की गतिहीनता आती है, जो मिट्टी की गुणवत्ता में बिगाड़ पैदा करता है। इसके विपरीत, कम्पोस्टिंग कार्बन–नाइट्रोजन अनुपात में 30:1 तक की कमी लाता है, जिससे वह मिट्टी पर इस्तेमाल के लिए फायदेमंद है। संग्रहित जैविक अवशिष्ट में ग्रामीण एवं शहरी इलाकों के मल की नालियों का कचरा, फसल के अवशिष्ट, सब्जियों का अवशिष्ट, धान की भूसी, घासफूस, पत्ते, गन्ने की छांटन आदि होते हैं, जिन्हें अन्य शब्दों में सभी सड़ सकने वाले कचरे कहा जा सकता है। कम्पोस्टिंग के बाद अंततः भूरी–काली नमीदार सामग्री प्राप्त होती है और जब उसे मिट्टी में मिलाया जाता है तो पौधों को पोषक तत्व मिलते हैं, मिट्टी की जैविक सामग्री को बनाए रखते हैं और उसकी शारीरिक, जैविक एवं रासायनिक स्थितियों में भी सुधार आता है।

भारत में कम्पोस्टिंग की दो भिन्न तकनीकें इस्तेमाल की जाती हैं। पहली तकनीक में एयरोबिक डिकम्पोजीशन यानी वायुजीवी अपघटन (सामग्री में वायु के संचारण के लिए उसे बार–बार उलट–पलट किया जाता है) किया जाता है। दूसरी तकनीक में एनेयरोबिक डिकम्पोजीशन यानी अवायुजीवी अपघटन किया जाता है।

वायुजीवी अपघटन

इंदौर तरीका[90] : भारत में 1924 और 1926 के बीच यह तरीका शुरू किया गया। इस तरीके में कम्पोस्टिंग की पूरी प्रक्रिया समाप्त होने में लगभग दो से तीन महीने लगते हैं। इस तरीके में इस्तेमाल होने वाली कच्ची सामग्रियों में मिश्रित पौधों का अवशिष्ट, पशुओं का गोबर एवं मूत्र, मिट्टी, लकड़ी, राख एवं पानी शामिल हैं। खेत पर उपलब्ध खरपतवार, डंठल, तना, गिरे पत्ते और चारा के बचे–खुचे भाग जैसी जैविक सामग्री के अवशिष्ट को एक ढेर के रूप में एकत्रित किया जाता है। कपास या मटर के डंठलों जैसी किसी भी कड़ी लकड़ी या डंठल को कम्पोस्ट के खड्डे में डालने से पहले कुचल दें। कुल कम्पोस्ट सामग्री का सिर्फ 10 प्रतिशत कड़ी लकड़ी या डंठल होना चाहिए। उसके बाद हरी सामग्रियों, जो मुलायम और गूदेदार होती है, को सूखा कर उनका ढेर लगाएं, और हरेक सामग्री की 15 सेन्टीमीटर मोटी परत बनाएं, जब तक कि ढेर लगभग 1–1.5 मीटर ऊंचा न हो जाए। इसके बाद, ढेर को मोटे चौकोर केकों (बट्टियों) के रूप में काटें और उन्हें मवेशियों के शेड में रात भर के लिए बिछाएं। अगली सुबह मवेशी के गोबर एवं मूत्र के साथ इस बिछाव को कम्पोस्ट के खड्डे में डालें। इंदौर तरीका की दो उप–तकनीकें निम्नलिखित हैं :

[90] Howard, Albert.& Wad, D. Yeshwant. "The Manufacture of Compost by the Indore Method", The Waste Products of Agriculture -- Their Utilization as Humus, Journey to Forever. Retrieved from: http://journeytoforever.org/farm_library/HowardWPA/WPA4.html

खड्डे का तरीका : इस तरीके में एक मीटर गहरा और 1.5–2 मीटर चौड़ा (कोई भी लंबाई उपयुक्त है) एक खड्डा बनाया जाता है। खड्डा ऊंचाई की जमीन पर होना चाहिए ताकि बारिश का पानी इसमें प्रवाहित न हो। यह मवेशियों के शेड और जल स्रोतों के नजदीक भी होना चाहिए।

मवेशी शेड से इन बिछाव को मवेशियों के गोबर एवं मूत्र के साथ 10–15 सेन्टीमीटर की मोटाई वाली परतों को खड्डे में बिछाएं। प्रत्येक परत में मवेशियों का 4–5 किलो गोबर का गाढ़ा घोल, 3–4 किलो मूत्र और 15 दिन पुराने एक कम्पोस्ट खड्डे से 3–4 किलो मिट्टी एवं निवेश द्रव्य मिले होते हैं। खड्डे में सामग्री पर एक पर्याप्त मात्रा में पानी छिड़कें। एक सप्ताह बाद उसे गोबर की गाढ़ी परत से भरें। प्रत्येक 15 दिनों पर सामग्री को उलट–पलट करें।

ढेर का तरीका[91] : यह तरीका भारी वर्षा वाले इलाकों के लिए बेहतरीन है। जमीन से ऊपर ढेर को तैयार किया जाता है और शेड द्वारा उसकी रक्षा की जाती है। खड्डे की तरह यह ढेर लगभग दो मीटर ऊंचा और 1. 5–2 मीटर चौड़े आधार का हो, जो ढेर की चोटी पर संकरा किया जाए। कभी–कभी इसकी हवा से रक्षा के लिए चारों तरफ एक छोटी मेढ़ बनाई जाती है।

इस ढेर को भूसी, घासफूस, सूखे पत्ते या लकड़ी का बुरादा जैसी कार्बनशील सामग्री की 20 सेन्टीमीटर की परत के साथ शुरू करें। इस परत के ऊपरी हिस्से पर ताजी घास, हरे पौधे का अवशिष्ट, ताजा या शुष्क गोबर या मल के नाले से निकली सूखी गाद जैसी नाइट्रोजनकारी सामग्री फैलाएं। इस ढेर को कार्बनशील और नाइट्रोजनकारी सामग्री की वैकल्पिक परतों के साथ पूरा करें और नमी लाने के लिए उसे गीला करें। ढेर के भीतर गर्मी बनाए रखने के लिए उसे मिट्टी या घासफूस से ढकें। प्रत्येक 6–12 सप्ताह पर ढेर को उलट–पलट करें। यदि कोई नाइट्रोजनकारी सामग्री उपलब्ध न हो तो पहले उलट–पलट के बाद सनाई (sunn hemp) के पौधे जैसा कोई भी दाल–प्रजाति का पौधा बोया जा सकता है या कुछ हरित खाद इस ढेर के ऊपर बिछाया जा सकता है। इस तरीके की कम्पोस्टिंग में लगभग चार महीने लगते हैं।[92]

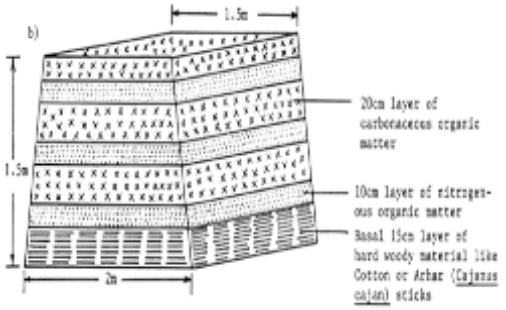

चित्र–14 : एक जैविक कम्पोस्ट गड्ढा। स्रोत : Food and Agricultural Organisation (FAO) online at: http://www.fao.org/docrep/field/003/ab467e/AB467E43.gif

अवायुजीवी अपघटन

बेंगलुरू तरीका[93] : भारत के बेंगलुरू में 1939 में कम्पोस्टिंग का यह तरीका विकसित किया गया था। इसमें

[91] "In Monsoon Season Make Heaps not Pits", The Compost Pit - Tradition Meets Science at Indore India. The Compost Gardener.com. Retrieved from: http://www.the-compost-gardener.com/compost-pit.html

[92] "Indian Bangalore Method", Anaerobic composting, Traditional methods, Small-scale composting in On-farm composting methods. Natural Resources Management and Environment Department. FAO Corporate Document Repository, Online at: http://www.fao.org/docrep/007/y5104e/y5104e06.htm

[93] ibid

कम्पोस्टिंग की तैयारी में मल एवं जैविक अवशिष्ट के उपयोग की सलाह दी जाती है। यह तरीका, इंदौर तरीके की बहुत–सारी खामियों को दूर करता है, जैसे– प्रतिकूल मौसम के दुष्प्रभावों, तेज हवाओं या तेज धूप से हानियों, बार–बार उलट–पलट की आवश्यकताओं, मक्खियों का लगना। लेकिन, इसमें कम्पोस्ट तैयार करने में अधिक समय लगता है। यह तरीका कम बारिश वाले इलाकों के लिए उपयुक्त है।

इंदौर तरीके जैसा ही ऊंचे स्थानों पर 1–2 मीटर गहरा खांचा या खड्डा बनाया जाता है। खड्डे ढलवां दीवारों के हों और जलभराव रोकने के लिए 90 सेंटीमीटर के ढलान की फर्श हो। जैविक अवशिष्ट और मल को वैकल्पिक परतों में डाला जाता है और भरने के बाद 15–20 सेंटीमीटर मोटी परत के जैविक अवशिष्ट से खड्डे को ढका जाता है। इन सामग्रियों को तीन महीने तक न तो उलट–पलट किया जाता है, न ही पानी डाला जाता है। इस अवधि के दौरान बॉयोमास के आयतन में कमी से यह सामग्री जम जाती है और वैकल्पिक परतों में अतिरिक्त मल और जैविक अवशिष को सबसे ऊपर डाला जाता है तथा नमी की हानि या मक्खियों के प्रजनन को रोकने के लिए कीचड़ या मिट्टी के प्लास्टर से ढका जाता है। यह सामग्री आरंभ में लगभग 8–10 दिनों तक वायुजीवी अपघटन के दौर से गुजरती है और फिर धीमी दर से अवायुजीवी अपघटन के दौर से गुजरती है। इस प्रकार, उत्पाद तैयार करने में लगभग 6–8 महीने लग जाते हैं।

खेत का खाद

गौशाला की खाद, कम्पोस्ट का अन्य रूप है। इसमें बिछाव के लिए भूसी या घासफूस और मवेशियों का आंशिक रूप से अपघटित गोबर एवं मूत्र होते हैं। मवेशियों का गोबर नाइट्रोजन, पोटाश और फोस्फोरम से समृद्ध होता है। लेकिन, उच्च स्तर की काष्ठ अपद्रवता (lignin) और प्रोटीन गोबर के पूरे अपघटन को रोकती है, इसलिए धीरे–धीरे पोषक तत्वों का स्राव होता है। मवेशियों का मूत्र भी पोषक तत्वों से समृद्ध होता है, जो अधिक आसानी से उपलब्ध हो जाता है। मुख्यतः मूत्र का नाश होने से रोकने और खाद की मात्रा में वृद्धि के लिए मवेशियों के शेड में बिछाव के लिए भूसी और घासफूस का इस्तेमाल किया जाता है।

समय–समय पर भूसी, गोबर एवं मूत्र एकत्रित किया जाता है और खड्डों या ढेरों में डाला जाता है, जो क्रमशः खड्डे या ढेर में पड़े रखने का कम्पोस्टिंग तरीका है। गौशाला के खाद की मात्रा एवं गुणवत्ता मवेशियों की किस्म एवं आयु, उनके भरण–पोषण की गुणवत्ता और कच्ची सामग्रियों के संग्रहण और हस्तांतरण पर निर्भर करती है। 5–6 महीनों के बाद यह खाद इस्तेमाल–योग्य बन जाता है। ये तरीके वर्षा के मौसम से पहले शुरू किए जाएं और साल भर तक जारी रखे जाएं। इसके समुचित संरक्षण से खाद की मात्रा प्रति मवेशी, प्रतिवर्ष 4–5 टन जितनी होगी और जिसमें 0.5 प्रतिशत नाइट्रोजन की मात्रा होगी। गौशाला की खाद बनाने में किसी प्रकार की भारी धातु का उपयोग न किया जाए।[94]

चित्र–15 : आसान बात : कम्पोस्ट बनाने के लिए सही किस्म के केंचुओं का चयन करना बहुत जरूरी है। फोटो : एस. शिवा सारावानन। स्रोत : http://www.thehindu.com/multimedia/dynamic/01514/VERMICOMPOST_1514058f.jpg

[94] Chandra, Krishan. Dr. "Organic Manures", Regional Centre of Organic Farming, Bangalore, January 2005. Retrieved from:http://ncof.dacnet.nic.in/Training_manuals/Training_manuals_in_English/Organicmanures.pdf

वर्मीकम्पोस्ट[95]

वर्मीकम्पोस्ट जैविक मलबे को कृमि सांचों (वॉर्म कास्टिंग्स) में तब्दील करने की प्रक्रिया है। कृमि सांचे मिट्टी के उपजाऊपन के लिए बहुत महत्वपूर्ण हैं क्योंकि उनमें नाइट्रोजन, पोटेशियम, फोस्फोरस, केल्शियम और मैंगनीज की उच्च मात्रा होती हैं। कई अनुसंधानकर्ताओं ने दर्शाया है कि केंचुओं के सांचों में बेहतरीन वायु–संचारण, छिद्रिलता, संरचना, जलनिकासी और नमीधारण क्षमता होती है। केंचुओं की छिद्रिल क्रिया एवं केंचुओं द्वारा खुदाई के जरिए प्राकृतिक जुताई मिट्टी में जल की व्याप्ति सुनिश्चित करती है।

तैयारी का तरीका

वर्मीकम्पोस्ट जमीन पर एक ढेर के रूप में या खड्डे में तैयार किया जा सकता है, जिसका खड्डा एक मीटर गहरा हो। यह एक मीटर ऊंची दीवारों से घिरे बाड़े में, जिसे मिट्टी या पत्थरों या सीमेंट से तैयार किया गया हो या सीमेन्ट के छल्लों में भी वर्मीकम्पोस्ट बन सकता है। छायादार इलाकों में वर्मीकम्पोस्ट तैयार किया जाना चाहिए।

केंचुओं का चयन : वर्मीकम्पोस्ट तैयार करने के लिए केंचुओं की गैर–छिद्रिल किस्म (लाल या बैंगनी, जो मिट्टी की सतह पर रहते हैं और 90 प्रतिशत जैविक अवशिष्ट सामग्रियों को खा जाते हैं) का इस्तेमाल किया जाता है। वर्मीकम्पोस्ट तैयार करने में केंचुओं की गैर–छिद्रिल किस्म (पीले रंग के, जो मिट्टी के भीतर रहते हैं और 90 प्रतिशत मिट्टी को खा जाते हैं) का इस्तेमाल नहीं किया जाता है।

जैविक सामग्रियां

मवेशियों को खिलाने के बाद जैविक अवशिष्टों में ज्वार की भूसी एवं चावल की भूसी, सूखे पत्ते, गेहूं की भूसी, सब्जियों की बची–खुची सामग्री, सोयाबीन का अवशिष्ट, खरपतवार, गन्ने का कूड़ा–कर्कट, पशु खाद, डेयरी एवं पॉल्ट्री का अवशिष्ट, म्यूनिसिपलिटी के गटर का मल, बॉयोगैस की गाद, चीनी मिलों की खोई (बैगासे) आदि का इस्तेमाल किया जा सकता है।

प्रक्रिया

- एक पोलीथीन की चादर से सीमेंट के घेरे के निचले भाग (90 सेंटीमीटर व्यास ग 30 सेंटीमीटर ऊंचाई) को ढकें और इस चादर पर जैविक अवशिष्ट (50 किलो) की एक परत (15–20 सेंटीमीटर) का छिड़काव करें। इस परत पर रॉक फोस्फेट (2 किलो) का छिड़काव करें।
- गाय के गोबर को गाढ़ा (15 किलो) करें और उसका एक परत पर छिड़काव करें।
- जैविक सामग्रियों को परतों में पूरी तरह से भरें।
- गाय के गोबर या मिट्टी की लेई बाड़े के सबसे ऊपरी भाग पर लगाएं और इस सामग्री को 20 दिनों तक अपघटित होने दें।

[95] "Vermicompost", Organic Farming: Compost in Department of Agronomy, Tamil Nadu Agricultural University. Online at:http://agritech.tnau.ac.in/org_farm/orgfarm_vermicompost.html

- 20 दिनों के बाद केंचुओं (500–750) को दरारों के जरिए इसमें छोड़े।
- पक्षियों द्वारा केंचुओं को चुगने से रोकने के लिए तारों की जाली या टाट के बोरों से बाड़े को ढंकें।
- केंचुओं का शारीरिक तापमान और नमी बनाए रखने के लिए पानी (3 दिन के अंतराल पर 5 लीटर) का छिड़काव करें।
- यह वर्मीकम्पोस्ट 2–2.5 महीनों में तैयार हो जाता है। यह काला, वजन में हल्का होता है और उसमें कोई गंध नहीं होती।
- कम्पोस्ट तैयार होने पर उसे बाड़े से हटाएं और एक शंकु (कॉन) के रूप में ढेर लगाएं। ढेर को 2–3 घंटे तक न छेड़ें और केंचुओं को धीमे–धीमे ढेर के निचले भाग में जाने दें।
- ऊपरी हिस्से को अलग करें और केंचुओं को अलग करने के लिए निचले भाग को छानें, जिसका पुनः इस्तेमाल किया जा सकता है।
- इसे बोरियों में पैक करें और एक ठंडे स्थान पर उसका भंडारण करें।

चूना उपचार

बागवान अक्सर पाते हैं कि जहां वे काष्ठ–उपद्रवता समृद्ध पौधा सामग्री का इस्तेमाल करते हैं, वहां उसका कम्पोस्ट तेजी से नहीं पकता। कड़ी पौधा सामग्रियों से अच्छा कम्पोस्ट बनाने की एक तकनीक में प्रति 1,000 किलो अवशिष्ट में 5 किलो चूना मिलाया जाता है। चूने का सूखे पाउडर के रूप में या पर्याप्त पानी में मिला कर उसका इस्तेमाल किया जा सकता है। चूने का उपचार कड़ी सामग्रियों के अपघटन की प्रक्रिया को संवर्धित करता है। चूने के बजाए प्रति 1,000 किलो जैविक अवशिष्ट में 20 किलो पाउडरयुक्त फोस्फट मिला कर उसका इस्तेमाल किया जा सकता है। फोस्फेट के पत्थर में अत्यधिक चूना होता है। फोस्फेट के पत्थर में मौजूद फोस्फेट्स और लघु–पोषक तत्व पौधों के पोषक तत्वों में कम्पोस्ट को समृद्ध बनाते हैं।

वर्मी–वाश

वर्मी–वाश कीड़ा–सक्रियण की एक तंत्रिका के रास्ते से प्राप्त एक तांबे जैसा भूरे रंग का तरल उर्वरक है। इसे पत्तों पर छिड़का जाता है। वर्मी–वाश ऑक्सीन (auxin) एवं साइटोकिनिन (cytokinin) जैसे हारमोन्स से समृद्ध होता है, साथ ही नाइट्रोजन, पोटाश, फोस्फोरस एवं अन्य लघु–पोषक तत्वों जैसे पोषक तत्वों से समृद्ध है। यह पौधे के टॉनिक के रूप में काम करता है और कीड़ों के हमलों से रक्षा करता है। मवेशियों के मूत्र एवं पानी में मिलाने पर वर्मी–वाश जैव–कीटनाशक और तरल खाद के रूप में कार्य करता है। यह पौधों में प्रकाश–संश्लेषण की दरों में वृद्धि करता है एवं फसल की उपज बढ़ाता है और कम्पोस्टिंग में

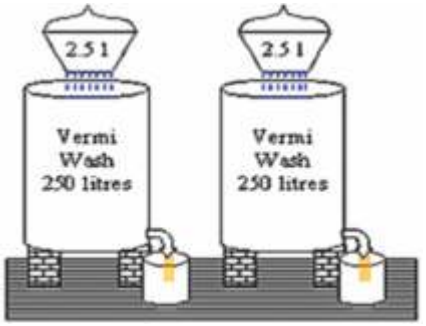

चित्र–16 : वर्मीवाश – वर्मीवाश–डिजाइन ई.आर. एफ., चेन्नई द्वारा तैयार डिजाइन।
स्रोत : http://www.erfindia.org/images/vermiwash.gif

इस्तेमाल करने पर खाद के अपघटन की दर में वृद्धि करता है। वर्मी–वाश के पीछे सिद्धांत यह है कि जब कीड़ा–सक्रियण के एक चैनल के जरिए पानी बहता है तो यह केंचुओं और अपघटित सामग्री में पोषक तत्वों से स्राव लेता है।[96]

प्रक्रिया : वर्मी–वाश की प्रक्रिया वर्मीकम्पोस्टिंग की प्रक्रिया के साथ चलाई जा सकती है :

- वर्मीकम्पोस्टिंग किए जाने वाले ड्रम (बैरल) के पेंदे में एक छेद करें, और पानी एकत्रित करने के लिए टोटी लगाएं।
- ड्रम के पेंदे में एक अन्य पात्र लगाएं ताकि नियमित रूप से वर्मी–वाश एकत्र किया जा सके।
- प्रतिदिन इस ड्रम में 4–5 लीटर पानी डालें और 10 दिनों के भीतर वर्मी–वाश एकत्रित किया जा सकता है।
- एक ठंडे एवं सूखे स्थान पर वर्मी–वाश का भंडारण करें।

एहतियात : वर्मी–वाश बनाने के दौरान कुछ एहतियातें बरती जानी चाहिए : पानी को धीरे–धीरे डाला जाए, पानी डालने के दौरान कोई गैर–अपघिटत सामग्री न मिलाई जाए, कोई भी हरित सामग्री बिल्कुल न डाली जाए और वर्मी–वाश की सामग्री को ठस न होने दें।

इस्तेमाल : बाल–पौधों को प्रतिरोपण से पहले लगभग 20 मिनट तक वर्मी–वाश घोल (वर्मी–वाश के प्रत्येक भाग के लिए 5 भाग पानी मिलाएं) में डूबा कर रखा जा सकता है। इसी प्रकार, प्रतिरोपण से पहले कलमों (कटिंग्स) को भी डूबा कर रखा जा सकता हैं। पतले किए गए वर्मी–वाश (5 भाग पानी के साथ) को पत्तों पर छिड़का जा सकता है। यह पौधों को महत्वपूर्ण पोषक तत्व देता है और कीड़ों के हमलों से रक्षा करता है। वर्मी–वाश घोल (वर्मी–वाश के प्रत्येक भाग में 10 भाग पानी है) से मिट्टी गीली की जा सकती है। यह कुछ मिट्टी–जनित रोगजनकों की रोकथाम करता है।

पंचकाव्या : पंचकाव्या एक प्राचीन उत्पाद है, जो पौधा प्रणाली में वृद्धि को बढ़ावा और प्रतिरोधक क्षमता देने में मदद करता है। इसमें 9 घटक होते हैं : 10 लीटर पानी, 7 किलो गाय का गोबर, 10 लीटर गोमूत्र, 3 लीटर गाय का दूध, 2 लीटर दही, 3 लीटर कोमल नारियल पानी, 3 किलो गुड़, 1 किलो घी और 12 अच्छी तरह पके केले।[97]

चित्र–17 : पंचकाव्या के घटक : 1. गाय का गोबर, 2. गोमूत्र, 3. घी, 4. गाय का दूध, 5. पानी, 6. दही, 7. गुड़, 8. कोमल नारियल का पानी, और 9. अच्छी तरह पका हुआ केला।
स्रोत : Agrimahiti: Free online agricultural information: http://agrimahiti.com/images/OrganicFarming/Pan1.png

[96] "Vermiwash", Ecoscience Research Foundation, Chennai. Retrieved from: http://www.erfindia.org/vermiwash.asp
[97] "Panchakavya ingredients and method of preparation" Organic inputs and techniques – Organic farming, Tamil Nadu Agricultural University (TNAU) Retrieved from: http://agritech.tnau.ac.in/org_farm/orgfarm_panchakavya.html#Panchakavya

तैयारी : पंचकाव्या की तैयारी में 30 दिन लगते हैं :

- मिट्टी या प्लास्टिक के बड़े बर्तन में गाय का गोबर एवं घी को पूरी तरह मिलाएं और 3 दिन तक सुबह एवं शाम को बराबर घुमाते रहें।
- इस मिश्रण में गोमूत्र एवं पानी मिलाएं और अन्य 15 दिन तक सुबह एवं शाम को नियमित रूप से घुमाते रहें।
- 15 दिन के बाद अन्य घटक मिलाएं एवं उसके बाद अन्य 12 दिन तक इस मिश्रण को छोड़ दें और मच्छरों एवं मक्खियों का प्रजनन रोकने के लिए उसे ढंक कर रखें।

फायदे :

पंचकाव्या में पौधों के लिए आवश्यक सभी प्रमुख पोषक तत्व, लघु पोषक तत्व और उपज की वृद्धि के लिए आवश्यक हारमोन्स होते हैं। लैक्टोबेसिलस, जो दही में मौजूद एक बैक्टीरिया है, ओर्गेनिक एसिड्स, हाइड्रोजन, परोक्साइड एवं एंटीबॉयोटिक्स जैसे विभिन्न आवश्यक मेटाबोलाइट्स (चयापचक तत्व) पैदा करता है, जो फसल में मौजूद दूसरे हानिकारक सूक्ष्मजीवों के खिलाफ काफी प्रभावकारी है। पंचकाव्या के इस्तेमाल की आम तौर पर सभी फसलों के लिए सिफारिश की जाती है।

इस घोल को ड्रिप सिंचाई या फ्लो सिंचाई के जरिए प्रति हेक्टर 50 लीटर पानी मिलाया जा सकता है। बाल– पौधों के रोपण या बीजों की बुआई से पहले उन्हें 20 मिनट तक के लिए 3 प्रतिशत के एक घोल में डूबाया जा सकता है। हल्दी एवं अदरक की जड़ों और गन्नों को रोपने से पहले उनके गुच्छों को 30 मिनट तक 3 प्रतिशत के घोल में डुबा कर रखा जा सकता है।

फूल उगने के पूर्व–चरण के दौरान 15 दिन के अंतराल पर और फूल उगने के बाद 10 दिन के अंतराल पर पंचकाव्या का फसलों पर छिड़काव किया जा सकता है।

हरित खाद

हरित खाद और गैर–अपघटित हरित पौधे के ऊतक को मिट्टी में दबाने या उसके साथ जुताई से पूरक जैविक पोषक तत्वों के रूप में मिट्टी की गुणवत्ता में सुधार होता है। हरित खाद की फसलें मिट्टी में नाइट्रोजन (विशेषकर, यदि फसल दलहनों जैसी फलीदार है) प्रदान करती हैं क्योंकि उसकी जड़ों में मौजूद बैक्टीरिया में नाइट्रोजन बहाल करने की क्षमता होती है। हरित खाद की फसलें क्षरण एवं घोल के बहने से मिट्टी की रक्षा करती हैं।[98]

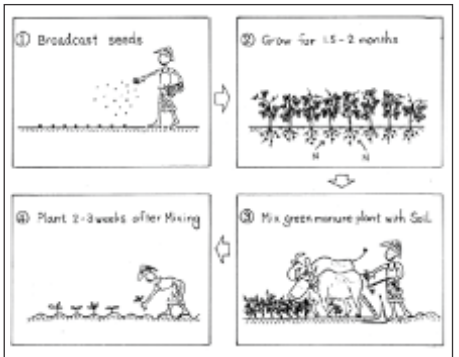

चित्र–18 : हरित खाद।
स्रोत : http://www.nanaironosora.sakura.ne.jp/LFN/lfnimages/chapter5_images/3.gif

[98] "Green Manure: What is Green Manure?" Tarahaat. Retrieved from: http://www.tarahaat.com/organic_green.aspx

कुछ हरित खाद फसलें इस प्रकार हैं :

- लोबिया : यह एक दाल–प्रजाति है, जो हरित खाद के रूप में असरदार है क्योंकि यह आसानी से अपघटित होती है। इसका जून और जुलाई में रोपण किया जाना चाहिए।
- ढायचा : एक हरित खाद फसल, जो दुमटी और चिकनी–मिट्टी में हो सकती है। यदि इसका 4–5 साल तक रोपण जारी रखा जाए तो यह मिट्टी का क्षारीय स्तर ठीक करती है। यह सूखा और जल स्थिरीकरण की समुचित रूप से प्रतिरोधी है।
- सन्न हेम्प (Sunn hemp) (सनाई) : यह एक तेजी से उगने वाली हरित खाद फसल है, जो बुआई के 45 दिनों के भीतर समावेशन को तैयार हो जाती है। लेकिन, फसल भारी वर्षा को सहन नहीं कर पाती और पत्ते–खाऊ सूंडियों के नुकसान से प्रवृत्त है।
- जंगली नील (Wild Indigo) (सारफोन्क / शारपोन्खा) : यह एकल फसल गीली भूमि जैसी हल्के रूप की मिट्टी में अच्छी तरह उगती है। जंगली नील एक धीमी गति से उगने वाली हरित खाद फसल है, जिसको मवेशी चरना पसंद नहीं करते। इसके बीज मोम–जैसे होते हैं, अभेद्य परत चढी होती है और इसके खरोंचे जाने से ही अंकुरण हो पाता है। अंकुरण करने का अन्य तरीका 2–3 मिनट तक उबलते पानी में बीजों को तर–बतर करना है।
- सफेद मुसली (Pillipesara) : यह दोहरे उद्देश्य वाली फसल हैं क्योंकि यह मवेशियों के चारे का स्रोत है और हरित खाद फसल भी है। यह दुमटी मिट्टी और चिकनी–समृद्ध मिट्टी में अच्छी उगती है।
- करंज : यह फलीदार पेड़ गीली भूमि में उगाया जाता है। एक पेड़ औसतन 100–120 किलो हरित पदार्थ की उपज करता है। इसके पत्तों में 3.7 प्रतिशत नाइट्रोजन (सूखे वजन के आधार पर) होता है।

फूल उगने के चरण से पहले मिट्टी में हरित खाद फसल का समावेशन किया जाना चाहिए क्योंकि उन्हें उनकी हरी पत्तेदार सामग्री के कारण उगाया जाता है, जिसमें उच्च पोषक तत्व होते हैं और मिट्टी की रक्षा करती है। हरित खाद मिट्टी में शीघ्र नहीं टूटता, इसलिए अगली फसल के लिए धीरे–धीरे कुछ पोषक तत्व शामिल किए जाने चाहिए। मिट्टी के भौतिक एवं रासायनिक गुणों में सुधार लाने के अलावा हरित खाद फसलें खरपतवार की वृद्धि को रोकती है। अधिकतर हरित खाद फसलें फलीदार होती हैं, इसलिए फसलों के बीच उनकी खेती करने पर नाइट्रोजन उर्वरकों का इस्तेमाल घटता है।[99]

[99] "Green Manure", Chapter-5, Soil Fertilization and Conservation, 5.3 Green Manure in Lessons from Nature. Retrieved from: http://www.nanaironosora.sakura.ne.jp/LFN/5_3.html

रसायन–मुक्त और जैविक कीटनाशक

पौधों को उगने के लिए उसे एक अच्छा संतुलित भोजन मिलना जरूरी है। उनकी टिड्डियों एवं कीड़े–मकोड़ों से भी रक्षा की जानी चाहिए। हरित क्रांति ने भारत में रासायनिक कीटनाशकों का इस्तेमाल शुरू किया। ये कीटनाशक कीट रोकने में असरदार थे, पर पौधों के अलावा उन पशुओं और मनुष्यों के लिए भी बहुत खतरनाक साबित हुए, जो उनके सहारे उगाई गई खाद्य पैदावार खाते थे।

डी.डी.टी. जैसे रासायनिक कीटनाशकों के प्रचलन से मनुष्य के केंद्रीय स्नायु तंत्र पर बुरा असर पड़ सकता है। कीटनाशकों की एक बड़ी मात्रा बह कर भूमिगत पानी में चली जाती है और मनुष्य एवं पशु यह पानी पीते हैं। शरीर की त्वचा इनमें से कुछ कीटनाशकों को सोखती है, जिससे बच्चों के व्यवहार में बदलाव, मस्तिष्क–रोग, बीमारी के झटके और मूर्च्छा जैसी समस्याएं पैदा हो सकती हैं। 20 साल तक रासायनिक शाकनाशकों (हरबिसाइड्स) का इस्तेमाल करने वाले किसान नोन–होड्गकिन्स लिम्फोमा (non-Hodgkin's lymphoma) जैसी बीमारियों के शिकार हो सकते हैं।[100]

रासायनिक कीटनाशकों के संपर्क में रहने से मनुष्य की प्रजनन प्रणाली भी प्रभावित होती है, जिससे लड़कियों में जल्दी तरुणाई आना, अंतर्गर्भाशय–रोग एवं महिलाओं में हारमोन संबंधी अव्यवस्था और पुरुषों में अन्य बीमारियों के अलावा शुक्राणुओं में कमी आ सकती है। कई अनुसंधानकर्ताओं का दावा है कि कैंसर–मरीजों की संख्या में अभूतपूर्व वृद्धि की वजह खाद्य पदार्थों में अत्यधिक कीटनाशकों की मौजूदगी मानी जा सकती है। इनमें से कुछ कीटनाशकों ने मिट्टी के उन पोषक तत्वों को छीना है, जो पौधों के विकास के लिए आवश्यक हैं।[101]

लंबे समय तक इन नुकसानदायक रासायनिक कीटनाशकों के इस्तेमाल से उन टिड्डियों की नई नस्ल विकसित हुई है, जो रासायनिक कीटनाशकों की प्रतिरोधी हैं। कीटनाशक सीधे और अप्रत्यक्ष तरीकों से वन्य जीवन को भी हानि पहुंचाते हैं और उनसे विषाक्तीकरण या मौत होती हैं।[102]

रासायनिक कीटनाशकों के खतरनाक प्रभावों को रोकने और ऊपरी मिट्टी में धीमी गति से बिगाड़ की प्रक्रिया को पलटने के लिए वैज्ञानिकों ने पारम्परिक एवं जैविक कीटनाशकों के इस्तेमाल की सलाह दी है। जैविक कीटनाशक मवेशियों के अवशिष्ट और नीम जैसे औषधीय पौधों एवं सब्जियों के कचरे से बनाए जाते हैं। इन कीटनाशकों का टिड्डियों के हमलों पर काबू पाने में ऐतिहासिक रूप से इस्तेमाल किया जाता था। चूंकि

[100] Schinasi, Leah. Leon, E. Maria."Non-Hodgkin Lymphoma and Occupational Exposure to Agricultural Pesticide Chemical Groups and Active Ingredients: A Systematic Review and Meta-Analysis", Int J Environ Res Public Health, Apr 2014; 11(4): 4449–4527. Published online Apr 23, 2014. doi:10.3390/ijerph110404449. Retrieved from: http://www.ncbi.nlm.nih.gov/pmc/articles/PMC4025008/

[101] Bergman, Åke. Et.al. (Eds.), "State of the Science of Endocrine Disrupting Chemicals – 2012", Inter-Organization Programme for the Sound Management of Chemicals, United Nations Environment Programme and the World Health Organization, 2013.

[102] Shiva, Vandana. Dr. et al."Chemical farming: Damage to the environment", in Principles of Organic Farming: Renewing the Earth's Harvest, Chapter-II, Navdanya, New Delhi, 2004.

उनकी तैयारी विधि थकाऊ एवं समय के लिहाज से खर्चीली है, इसलिए किसान ऊंचे मूल्य के रसायनों के इस्तेमाल के लिए प्रेरित हुए। लेकिन, हाल ही के दशकों में दुनिया भर के किसान रसायनों के खतरनाक प्रभावों के बारे में जागरूक बनें और उन्होंने जैविक कीटनाशकों की ओर लौटना शुरू कर दिया है।

अगले भाग में बतलाया जाएगा कि किस प्रकार इन जैविक कीटनाशकों को तैयार एवं इस्तेमाल करें।

प्राकृतिक कीटनाशक[103]

प्राकृतिक कीटनाशक रासायनिक कीटनाशकों का सबसे सस्ता और सबसे सुरक्षित विकल्प है। प्राकृतिक कीटनाशकों के इस्तेमाल से पहले सूर्य की धूप में उन्हें सुखाया जाए क्योंकि सूर्य की सीधी धूप उसके सक्रिय घटकों को तोड़ सकती है। पानी के साथ नीम की पत्तियों एवं गुदा को मिलाने से एक असरदार कीटनाशक बनता है। इसी प्रकार, सीताफल, मिर्ची एवं कालीमिर्च के अलावा निकोटिनयुक्त तंबाकू के पत्तों में कीटनाशी क्षमता होती है, जो टिड्डियों को दूर रखते हैं।

कैनावालिया (Canavalia) (खांडसाम्पल/बैडिसेम) एक पौधा है, जो पत्तों को काटने वाली चीटियों पर असरदार होता है। चीटियां पत्तों को खाती नहीं, बल्कि काटती हैं, लेकिन वे एक विशेष फंगस का प्रजनन करती हैं, जो उनका भोजन है। कैनावालिया इस फंगस के प्रजनन को रोकता है, जिससे चीटियां भूखे मरती हैं। गाय का दूध भी एक असरदार कीटनाशक है क्योंकि उसे आटे एवं पानी के साथ मिलाने के बाद उसके घोल के छिड़काव से अंडे मर जाते हैं और विषाणुधारी कीड़ों पर नियंत्रण लगता है।

सांप जैसे प्राकृतिक जीवभक्षी चूहों को खाते हैं। मकड़ियों जैसे कीड़े भी उन छोटे कीड़ों को खाते हैं, जो फसल को नुकसान पहुंचाते हैं। ये जीवभक्षी प्राकृतिक कीटनाशनक का काम करते हैं।

प्राकृतिक संसाधनों के इस्तेमाल द्वारा कई जैविक कीटनाशक तैयार किए जा सकते हैं। कुछ जैविक कीटनाशकों की सूची निम्नलिखित है :

चित्र–19 : देसी गाय का मूत्र, तंबाकू के पत्ते, लहसुन, हरी मिर्चियां, नीम की लेई।[105]

अग्निआस्त्रा[104]

सुभाष पालेकर (जो, जीरो बजट की प्राकृतिक खेती के लिए विख्यात हैं) ने कई प्राकृतिक कीटनाशकों के फोर्मूले (फोर्मूलेशंस)

[103] "Natural Pesticide Recipes", Nursery Manuals – Appendix 2, World Agro-forestry Centre. Retrieved from: http://www.worldagro-forestrycentre.org/NurseryManuals/Community/Appendix2.pdf

[104] "Agniastra", How to prepare a Agni Astra – Insect and pest management, KrishiKa Rishi, Zero Budget Spiritual Farming. Retrieved from: http://palekarzerobudgetspiritualfarming.org/Agniastra.aspx

[105] Photo credits: Desi Cow: Desi cow and calf - http://pasuthai.com/blog/wp-content/uploads/2013/07/599903_497792670236131_531775489_n.jpg; Cow Urine: http://eofdreams.com/data_images/dreams/garlic/garlic-12.jpg ; Tobacco leaves: http://upload.wikimedia.org/wikipedia/commons/6/6c/Kenbano_tobacco_leaf.jpgGarlics: http://eofdreams.com/data_images/dreams/garlic/garlic-12.jpg; Green Chilli: http://oddanchatramvegetablemarket.com/wp-content/uploads/2014/06/green-chilli.jpg; crushed neem leaves: http://pad2.whstatic.com/images/thumb/c/c0/Make-Fresh-Neem-Leaves-Paste-Step-3-Version-2.jpg/670px-Make-Fresh-Neem-Leaves-Paste-Step-3-Version-2.jpg

विकसित किए हैं, जो किसानों के पास उपलब्ध घटकों से आसानी से बनाए जा सकते हैं। अग्निआस्त्रा, नीमाआस्त्रा और जीवामृता इस प्रकार के कुछ प्राकृतिक कीटनाशक हैं।

अग्निआस्त्रा का मुख्य घटक गोमूत्र है और जैविक मिश्रण घोल तैयार करने एवं कीट नियंत्रण के लिए उसका इस्तेमाल किया जाता है। इसमें इस्तेमाल होने वाली अन्य प्राकृतिक जड़ी–बूटियां तंबाकू के पत्ते, लहसुन, कालीमिर्च, गुड़, हरी मिर्च और पानी हैं। इस प्राकृतिक कीटनाशक को सब्जियों, फलों, फूलों और अन्य कृषि फसलों पर इस्तेमाल किया जा सकता है। यह पत्तों को बेलनाकार बनाने वालों, तना–छेदकों, फल–छेदकों और फली–छेदकों जैसी बीमारियों और कीटों पर असरदार होता है।

घटक : 10 लीटर गोमूत्र, 1 किलो कुचले तंबाकू पत्ते, 500 ग्राम हरी मिर्च, 500 ग्राम लहसुन, 5 किलो नीम पत्तों की गुदा।

बनाने की विधि :

- सभी घटकों की एक मोटी लेई (पेस्ट) बनाएं और उसे गोमूत्र में पूरी तरह मिलाएं।
- सामग्री को गरम करें और उसे 5 मिनट तक उबलने दें।
- इस मिश्रण को 24 घंटे तक सड़ने दें।
- एक कपड़े के जरिए किसी बर्तन में छानें।

अग्निआस्त्रा बनाने के समय सुनिश्चित करें कि उसमें कोई भी रसायन न मिलाएं।[106]

अग्निआस्त्रा को तैयार होने में कम से कम 21 दिन लगते हैं। इसका पहले एवं दूसरे प्रयोग में प्रत्येक 4 दिन में एक बार इस्तेमाल किया जाए और उसके बाद के प्रयोग में एक सप्ताह में एक बार इस्तेमाल किया जाए। अग्निआस्त्रा के इस्तेमाल का बेहतरीन समय तड़के या शाम के घंटों में है।

प्रयोग :

1 लीटर अग्निआस्त्रा को 5 लीटर पानी में मिलाया जाए और उसका फसलों पर छिड़काव किया जाए।[107]

फायदे :

- यह मिट्टी और पौधों के खाद के रूप में काम करता है।
- यह सभी प्रकार की टिड्डियों एवं कीड़े–मकोड़ों को मारता है और मिट्टी के उपजाऊपन में भी सुधार लाता है।
- यह पौधे को हरा–भरा बनाता है।
- यह उपज–स्तर सुधारता है।

[106] http://palekarzerobudgetspiritualfarming.org/Agniastra.aspx

[107] ibid.

चित्र–20 : नीम आस्त्रा के घटक : पानी, देसी गाय का मूत्र, देसी गाय का गोबर और नीम की पत्तियों की लेई।[109]

चित्र–21 : 24 घंटे के बाद इस घोल को छानें और इस्तेमाल की विधि के अनुसार उसका खेत में छिड़काव करें।

नीमास्त्रा[108]

नीमास्त्रा टिड्डियों एवं मीली बग्स (कीटाणु) को मारने में असरदार होता है। नीमास्त्रा के मुख्य घटक हैं : 100 लीटर पानी, 5 लीटर देसी गाय का गोमूत्र, 5 लीटर देसी गाय का गोबर, 5 किलो कुचले नीम पत्ते।

बनाने की तरीका :

- गोमूत्र को 100 लीटर पानी में मिलाएं।
- इस तरल मिश्रण में 5 किलो गाय का गोबर एवं कुचले नीम पत्ते और उसकी गुदा मिलाएं।
- इस घोल को 24 घंटे तक सड़ने दें।
- एक डंडे से एक दिन में दो बार इस घोल को घुमाएं।
- एक कपड़े से इस मिश्रण को छानें।

प्रयोग :

2 लीटर नीमास्त्रा 100 लीटर पानी में मिलाएं और उसका फसलों पर छिड़काव करें।

---

[108] "Neemastra" – How to prepare Neemastra, Insect and Pest Management, KrishiKa Rishi, Zero Budget Spiritual Farming, in Palekar's Zero Budget Farming. Retrieved from: http://palekarzerobudgetspiritualfarming.org/Neemastra.aspx

[109] Neemastra photo credits: water container - http://www.aawaste.co.uk/120%20Litre%20TH120LTR.jpg
cow urine - http://media.geekgardener.in/wp-content/uploads/cow-urine-pr.jpg
Mix cow urine and cow dung - http://media.geekgardener.in/wp-content/uploads/cow-dung.jpg
crushed neem leaves - http://pad2.whstatic.com/images/thumb/c/c0/Make-Fresh-Neem-Leaves-Paste-Step-3-Version-2.jpg/670px-Make-Fresh-Neem-Leaves-Paste-Step-3-Version-2.jpg
cow dung - http://cdn.yourstoryclub.com/wp-content/uploads/cow_dung_ organic_residual_excrement.jpg
filter with a cloth - http://www.worm-composting-help.com/images/Wormteapreparedforbotteling.jpg
man spraying - http://images.wisegeek.com/men-spraying-pesticides-in-field.jpg

जीवामृता[110]

यह गाय के गोबर, गोमूत्र, गुड़, दाल आटे और मेढ़ की मिट्टी का मिश्रण होता है। इसका मुख्यतः मिट्टी पर छिड़काव किया जाता है ताकि पौधे जल्दी विकसित हों और मिट्टी को पोषक तत्व मिलें।

जीवामृता के मुख्य घटक हैं : 200 लीटर पानी, देसी गाय का 10 किलो गोबर, देसी गाय का 5–10 लीटर मूत्र, 2 किलो गुड़, 2.5 किलो दाल आटा और कुछ मिट्टी।

बनाने की तरीका :

- एक ढोल में पानी, गाय का गोबर और गोमूत्र एक साथ मिलाएं।
- इस मिश्रण में पिसी हुई दाल और कुछ मिट्टी मिलाएं।
- इस घोल को घुमाएं और सूर्य की रोशनी से दूर रख कर उसे 48 घंटे तक सड़ने दें।

प्रयोग :

जीवामृता का सिंचाई के समय में या सीधे फसलों पर इस्तेमाल किया जा सकता है। इसका 10 प्रतिशत के एक घोल (10 लीटर पानी और 1 लीटर जीवामृत का घोल) में पौधों पर छिड़काव किया जा सकता है।

चित्र–22 : जीवामृता के घटक : पानी, देसी गाय का मूत्र, देसी गाय का गोबर, गुड़, दाल का आटा, मुट्ठी भर मिट्टी।[111]

बीजामृता[112]

इस जैविक मिश्रण का बीजों, बाल–पौधों या किसी भी रोपण सामग्री के उपचार में इस्तेमाल किया जा सकता है। रोपण से

चित्र–23 : बीजामृता के घटक : देसी गाय का गोबर, पानी, देसी गाय का मूत्र, चूना और मुट्ठी भर मिट्टी।[113]

[110] "Jiwamrita, How to Prepare Jiwamrita", Four wheels of Zero Budget Natural Farming, KrishiKa Rishi, Zero Budget Spiritual Farming, in Palekar's Zero Budget Farming. Retrieved from: http://palekarzerobudgetspiritualfarming.org/Jiwamrita.aspx

[111] Jiwamrita ingredients – photos courtesy: Water Drum - http://teja1.kuikr.com/i4/20150104/Blue-coloured-water-drum-200-litres-ak_L1298136891-1420345594.jpeg
cow dung - http://cdn.instructables.com/FBS/G6EO/I0LCD5EU/FBSG6EOI0LCD5EU.MEDIUM.jpg
cow urine - http://www.dailyexcelsior.com/wp-content/uploads/2013/02/4.jpg
jaggery - http://i1.ytimg.com/vi/aB4U5Kd6JJ0/0.jpg
pulses flour - http://agr.mt.gov/agr/_imageGallery/Images_NPGAPhotos/pulse_4309.jpg_116529035.jpg
handful of soil -http://www.evergreeninc.net/landscape/images/hands.jpg

[112] "How to Prepare Bijamirta", Zero Budget Spiritual Farming. Retrieved from: http://palekarzerobudgetspiritualfarming.org/bijamrita.aspx

[113] Bijamrita ingredients – photos credits: WATER DRUM - http://teja1.kuikr.com/i4/20150104/Blue-coloured-water-drum-200-litres-ak_L1298136891-1420345594.jpeg
cow dung - http://cdn.instructables.com/FBS/G6EO/I0LCD5EU/FBSG6EOI0LCD5EU.MEDIUM.jpg
cow urine - http://www.dailyexcelsior.com/wp-content/uploads/2013/02/4.jpg
handful of soil -http://www.evergreeninc.net/landscape/images/hands.jpg
Lime - http://www.briquetting-machine.com/upLoad/news/month_1407/201407111426489866.jpg

पहले रोपण सामग्री को बीजामृता में डूबाएं। इससे अंकुरण के शुरूआती एवं स्थापना चरण के दौरान खतरनाक मिट्टी–जनित और बीज–जनित रोगजनकों से फसल की रक्षा होती है।

घटक : 20 लीटर पानी, देसी गाय का 5 किलो गोबर, देसी गाय का 5 किलो मूत्र, 50 ग्राम चूना, खेत की मेढ़ से थोड़ी मिट्टी।

तरीका :

- गाय का 5 किलो गोबर लें, उसे एक कपड़े में बांधे और उसकी एक छोटी गठरी बनाएं। 20 लीटर पानी एक बाल्टी में भरें और 12 घंटे तक गाय के गोबर की गठरी को डुबा कर छोड़ दें।
- प्रत्येक 4 घंटे पर गाय के गोबर की गठरी को जोर से दबाएं, जिससे पानी में उसका पूरा सत्व प्राप्त होगा।
- एक लीटर पानी लें और इसमें 50 ग्राम चूना पाउडर मिलाएं। उसे अच्छी तरह मिलाएं और इसे घोल के रूप में जमने के लिए रात भर तक रखें।
- अगले दिन बाल्टी से गाय के गोबर की गठरी बाहर निकालें और गाय के गोबर के घोल में एक मुट्ठी मिट्टी, गोमूत्र एवं चूने का घोल मिलाएं। अब यह घोल इस्तेमाल के लिए तैयार है।

प्रयोग :

बीजामृता को बुआई के लिए बिखेरे जाने वाले बीजों में मिलाएं और बीजों को सूखने दें।

ब्रह्मास्त्रा[114]

ब्रह्मास्त्रा एक अन्य प्राकृतिक कीटनाशक है, जो किसानों के पास आसानी से उपलब्ध कच्ची सामग्रियों से तैयार किया जा सकता है। ब्रह्मास्त्रा स्वयं द्वारा तैयार कम बजट की जैविक खेती का एक भाग है। इसका कीड़ों के भारी हमलों की रोकथाम के साथ–साथ उपचारात्मक उपाय के तौर पर इस्तेमाल किया जाता है।

घटक : 10 लीटर गोमूत्र, 3 किलो नीम पत्ते, नीम पत्तों की गुदा का 3 लीटर घोल, सीताफल की 2 किलो गुदा, पपीते के पत्तों की 2 किलो गुदा, अनार के पत्तों की 2 किलो गुदा, अमरूद के पत्तों की 2 किलो गुदा, लेन्टाना कामिल्ला (Lantana Camella) (राई मुनिया) की 2 किलो गुदा और सफेद धतूरा के पत्तों की 2 किलो गुदा।

बनाने का तरीका :

- गोमूत्र और नीम के पत्तों की गुदा एक साथ मिलाएं।
- इसमें सीताफल, पपीता, अनार, अमरूद, लेन्टाना कामिल्ला (राई मुनिया) एवं सफेद धतूरा के पत्तों की गुदा मिलाएं और उसे पांच बार उबालें।
- इसे एक कपड़े में छानें और इस घोल को 24 घंटे तक सड़ने दें।

[114] "How to Prepare Bramhastra (Bramha Missile)", Zero Budget Spiritual Farming. Retrieved from: http://palekarzerobudgetspiritualfarming.org/Bramhastra.aspx

प्रयोग :

ब्रह्मास्त्रा घोल (एक भाग ब्रह्मास्त्रा का घोल 50 भाग पानी में) का चूसक टिड्डियों, फली छेदक और फल छेदक कीटों पर नियंत्रण के लिए इस्तेमाल करें।

वृद्धि संवर्धक (ग्रोथ प्रोमोटर्स) : सड़ा हुआ मठ्ठा / नारियल दूध[115]

यह खाद का एक रूप है, जिसे आसानी से बनाया जा सकता है और घरेलू सब्जियों एवं फसलों के लिए भी इस्तेमाल किया जा सकता है।

घटक : 5 लीटर मठ्ठा, 5 लीटर नारियल दूध।

बनाने का तरीका :

- एक बड़े बर्तन में 5–5 लीटर नारियल दूध और मठ्ठा मिलाएं।
- इस घोल को लगभग एक सप्ताह तक सड़ने दें।
- छिड़काव के समय पर इस घोल को पानी के 1:10 अनुपात (जैसे– प्रत्येक 1 लीटर घोल में 10 लीटर पानी) में मिलाएं।

प्रयोग :

एक सप्ताह तक सड़ाने के बाद इस मिश्रण का फसल पर छिड़काव करें। बेहतरीन नतीजों के लिए इस मिश्रण का फसल में फूल उगने के चरण में छिड़काव करें। इस मिश्रण के छिड़काव से पौधे की वृद्धि में तेजी आती है, जिसमें फूल उगाना, कीड़ों का प्रतिरोध और फंगसकारी बीमारियों का प्रतिरोध भी शामिल हैं। इस मिश्रण का सिंचाई के दौरान भी प्रति हेक्टर 5–10 लीटर की दर से इस्तेमाल किया जा सकता है।

कीट प्रतिरोधक[116]

चित्र–24 : लेन्टाना खरपतवार।

कीट प्रतिरोधक बनाने के घटक हैं :

कुछ उन पौधों के पत्ते, जिन्हें खाने में पशुओं को अच्छा नहीं लगता, जैसे लेन्टाना (लेन्टाना कामरा / Lantana Camara) या राई मुनिया के नाम से भी जाना जाता है, जो एक खरपतवार है)[117], वे पौधे, जिनसे वनस्पति जैसा दूध निकलता है, (जैसे– कालोट्रोप्सिस / calotropis), नीम एवं ग्वारपाठा (एलोवीरा / Aloe Vera) जैसे कड़वे स्वाद के पत्ते, जटरोफा (Jatropha) जैसे खट्टे स्वाद वाले पत्ते। ये पत्ते कुल 2 किलो हों। ये घटक पानी में उबाल या सोख कर कीट प्रतिरोधक बनाए जा सकते हैं।

उबालने की विधि : पत्तों को काटें और उन्हें मिट्टी के बर्तन में 10 लीटर पानी में डालें। उसे घट कर आधा होने

[115] "Manures - Fermented Buttermilk & Coconut Milk Solution", Agriculture for Everybody, September 2013. Online at:http://agricultureforeverybody.blogspot.in/2013/09/fermented-buttermilk-coconut-milk.html

[116] Pest Repellents, Crop Protection in Organic Farming Techniques n Myrada Krishi Vigyan Kendra, Erode, Tamil Nadu. Retrieved from: http://www.myradakvk.org/index.php?option=com_content&view=article&id=28&Itemid=24&lang=en#growth

[117] Lantana weed, photo courtesy: http://ponsetilandscaping.com/wp-content/uploads/2013/07/Lantana.jpg

(5 लीटर) तक उबालें। इस मिश्रण को ठंडा करें एवं उसमें 1 किलो हल्दी पाउडर मिलाएं और उसे 24 घंटे तक रखें।

सोखने की विधि : पत्तों को काटें एवं मिट्टी के बर्तन में गाय के 2 भाग गोबर और गोमूत्र के 4 भाग में मिलाएं और उसे एक सप्ताह तक सूर्य की रोशनी से दूर रखें।

प्रयोग : ऊपर की दोनों विधियों में से किसी से भी प्राप्त कीट प्रतिरोधकों को पानी में 1:10 अनुपात (एक लीटर घोल और 10 लीटर पानी) में मिलाएं और उसके बाद उसका फसलों पर छिड़काव करें। कीड़ों के हमलों की सीमा के आधार पर इसका एक सप्ताह या 10 दिनों के अंतराल पर दो या तीन बार छिड़काव किया जा सकता है।

फल–छेदकों पर नियंत्रण के लिए कीट प्रतिरोधक

फल–छेदक कीड़े किसानों के लिए एक बड़ी मुसीबत है क्योंकि वे सब्जियों एवं फल की 30–100 प्रतिशत फसलें बर्बाद कर सकते हैं। किसान कीटनाशकों के छिड़काव पर भारी राशि खर्च करते हैं। यह समस्या न सिर्फ मानव स्वास्थ्य एवं पर्यावरण पर बुरा असर डाल रही है, बल्कि फसलों की हानि और ऊंची लागत के चलते किसानों को कमाई का एक बड़ा हिस्सा भी गंवाना पड़ता है। जैविक कीटनाशक विधि से कीटों पर असरदार ढंग से काबू पाया जा सकता है और किसानों को खतरनाक रासायनिक कीटनाशकों पर भारी राशि खर्च करने से बचाया जा सकता है। तमिलनाडु में अधिकतर इस कीटप्रतिरोधक का इस्तेमाल किया जाता है।

चित्र–25 : फल–छेदक कीटों के लिए जैविक कीटनाशक के घटक : नीम के बीज, घोरानीम के बीज, कारंजा के बीच, सीताफल के बीज, गोल्डन नीम के बीज और हरिताकी के बीज।[118]

घटक : 1–2 किलो नीम बीज, 1–2 किलो गोरानीम या बकैन, 1–2 किलो करंज बीज, 1 किलो हरितकी बीज, 500 ग्राम सीताफल बीज, 100–500 ग्राम गोल्डन नेरियम (golden nerium) के बीज।

बनाने की विधि :

- ऊपर के किसी के भी बीजों को पाउडर के रूप में पीसें और उसे 4–5 लीटर पानी में मिलाएं।
- इस घोल के आधा होने तक उबालें और उसे ठंडा होने दें।
- यह मिश्रण ठंडा होने पर उसे सोखने या उबालने की विधि के जरिए प्राप्त कीट प्रतिरोधक में मिलाएं।

प्रयोग : इस कीट प्रतिरोधक का फल–छेदक कीटों पर काबू पाने के लिए सुबह और शाम के समय छिड़काव किया जाना चाहिए।

[118]Pest repellent ingredients for fruit borer. Photo credits : Neem seeds - http://onevillage.org/neemseeds(big).jpg
ghora neem (bakain) seeds - http://upload.wikimedia.org/wikipedia/commons/0/01/Indian_Grey_Hornbill_(Ocyceros_birostris)_eating_Bakain_(Melia_Azadirachta)_berries_at_Roorkee,_Uttarakhand_W_IMG_9016.jpg
karanja seeds - http://www.heenatradingco.com/wp-content/gallery/forest-plant/karanja-tree.gif
Haritaki seeds - http://bff.nithyananda.org/wp-content/uploads/2013/03/haritaki1.jpg
Custard apple seeds - http://healthbenefitstimes.com/9/uploads/2012/12/Pinks-Mammoth.jpg
Golden Nerium seeds - http://upload.wikimedia.org/wikipedia/commons/f/fe/Nerium_oleander_seeds.jpg

प्राकृतिक जीवभक्षी और ट्रैप–फसलें (पाश–फसलें)

अनेक ऐसे जीव हैं, जो टिड्डियों एवं कीड़े–मकोड़ों (शत्रु–कीटों) के हमलों और बीमारियों के प्रचलन में कमी लाते हैं। ये किसी भी खेत में बहुत–सारे पाए जाते हैं। इनमें से कुछ जीव किसानों के लिए उपयोगी हैं क्योंकि ये फसलों पर हमले करने वाले अनेक कीटों पर काबू पाते हैं। इन्हें प्राकृतिक जीवभक्षी (वे जीव, जो शिकारी होते हैं) या कीटों का प्राकृतिक दुश्मन कहा जाता है, जो कीटों (वे जीव, जिन पर हमला होता) को खाते हैं। इन प्राकृतिक दुश्मनों को तीन समूहों में बांटा जा सकता है : जीवभक्षी, परजीवी और रोगजनक।

जीवभक्षी : जानवर या कीड़े, जो अन्य जानवरों या कीड़ों का शिकार करते या खाते हैं। जीवक्षियों में चीते, सांप, मकड़ियां और सोन पंखी भौरें (लेडीबर्ड बीटल्स) शामिल हैं। वे अपने रोजाना के भोजन के तौर पर इन्हें खाते हैं। जीवभक्षियों का शारीरिक गठन इस प्रकार का होता है कि वे शिकार करने, झपटने, मारने और अपने शिकार को खाने में सक्षम होते हैं।[119] ये तीन तरीकों से कीटों की आबादी को काबू करते हैं : मार कर या भोजन के रूप में खाकर, चोट पहुंचा कर या बीमारियां पैदा कर।

परजीवी : परजीवी, कीटों के शरीर में प्रवेश कर उन्हें खाते हैं और उनके तरल पदार्थ एवं ऊतकों से पोष्टिकता पाते हैं, जिससे उनमें कमजोरी आती हैं या मर जाते हैं। कीटों पर हमला करने वाले परजीवी आम तौर पर ततैया या मक्खियों की प्रजातियों के होते हैं। वयस्क परजीवी अपने शिकार को ढूंढ़ता है और उसके बाद शिकार के शरीर में या उस पर अंडे जनता है।

कीट परजीवियों को निम्नलिखित वर्गों में बांटा जा सकता है :

- अंडा परजीवी अपने अंडे अन्य कीडों के अंडे में जनते हैं।
- इल्ली संबंधी परजीवी अपने अंडे अन्य कीड़ों पर या उनके इल्ली चरण में जनते हैं।
- प्यूपीय परजीवी अन्य कीड़ों के प्यूपीय चरण में विकसित होते हैं।
- कुछ परजीवी अपने शिकार के युवा या वयस्क चरण में विकसित होते हैं।[120]

रोगजनक : रोगजनक वे लघु जीव हैं, जो अपने मेजबान के शरीर में घुस कर बीमारी पैदा करते हैं, उसमें रहते एवं अपनी संख्या बढ़ाते हैं और उसे कमजोर करते हैं तथा मारते हैं। कुछ रोगजनकों को अपना जीवन चक्र पूरा करने के लिए एक से अधिक किस्म के शिकार की जरूरत होती है। रोगजनकों की किस्मों में बैक्टीरिया, फंगस, कीटाणु शामिल हैं। रोगजनक जिन कीड़ों पर हमला करते हैं, वे आम तौर पर सूज जाते हैं, रंग बदलते हैं, धीमे चलते हैं, अक्सर खाना बंद करते हैं और एक पाउडरनुमा पदार्थ से ढके होते हैं।[121]

[119] "Natural Enemies", Sweet potato ICM technical manual, retrieved from:http://www.eseap.cipotato.org/MF-ESEAP/TResources/FFS-ICM-SP/III-4.pdf

[120] Ibid.

[121] Ibid.

किसान प्राकृतिक जीवभक्षियों की विभिन्न किस्मों की मौजूदगी का फायदा उठा सकते हैं, जिसके लिए उनके खात्मे के बजाए उनकी देखभाल की जाए। कुछ जीवभक्षी कीड़े और पौधे निम्नलिखित हैं :[122]

सोन पंखी भौरें : इन्हें पंचबिंदी / घबरौला / अजंन ब्यारी भी कहते हैं। यह सोन पंखी मादा भौरें गोल एवं छोटी (1–10 मिमी.) होते हैं और आम तौर पर काली, लाल, नारंगी या पीली होते हैं। इनके पंख के कवर पर धब्बे होते हैं। वयस्क एवं इल्ली संबंधी सोन पंखी भौरें एफिड्स के महत्वपूर्ण जीवभक्षी हैं। एक अकेली सोन पंखी भौंरा अपने जीवन भर में 200–300 एफिड्स को खा सकता है।[123]

चित्र–26 : सोन पंखी भौंरा।
स्रोत : http://upload.wikimedia.org/ wikipedia/commons/6/65/P14_lady_beetle.jpg

मंडराने वाली मक्खियां : इन्हें फल–मक्खियों के नाम से भी जाना जाता है। इनका छोटी से लेकर बड़ी मक्खियों तक का एक बड़ा परिवार होता है। ये फसल के खेतों, सब्जियों के बगीचों और फूलों के बगीचों का बार–बार चक्कर लगाती हैं। मंडराने वाली मक्खियों पर काली पृष्ठभूमि में पीले, भूरे धब्बे, बैंड्स (फीते), या पट्टियां होती हैं। कभी–कभी घने बालों से उनके शरीर की सतह ढकी होती है। मंडराने वाली मक्खियां एक हेलीकॉप्टर की तरह हवा में गतिहीन भी रह सकती है। ये फूल वाले पौधों के मीठे रस को पीती हैं। ये परागण में बहुत मददगार होती हैं। उनकी इल्ली (लार्वा) बहुत उपयोगी है क्योंकि ये एफिड्स एवं छोटी इल्लियों की प्राकृतिक दुश्मन हैं।[124]

चित्र–27 : (हेलीकवरपा आर्मीजेरा), यह एक इल्ली है इसे चिंटिया अपना शिकार बनाती हैं।
स्रोते : http://en.wikipedia.org/wiki/File:Helicoverpa_armigera.jpg

चीटिंयां : चीटिंया जीवभक्षी कीड़े हैं और कई तरह से शिकार करती हैं। चीटिंयां फसलों पर हमला करने वाली इल्लियों एवं अन्य नुकसानदायक कीटों पर काबू पाने में बहुत उपयोगी हैं। उन्हें हेलीकोवेरापा आर्मीजेरा (Helicoverpa armigera) – अफ्रीकी बॉलवॉर्म (इल्लियों) का एक सर्वाधिक महत्वपूर्ण प्राकृतिक दुश्मन माना जाता है। यह एक कपड़कीडा है, जिसका लार्वा बहुत–सारे पौधों पर आश्रित रहता है और उनसे भोजन प्राप्त करता है, जिसमें अनेक फसलें शामिल हैं। यह कपास में एक प्रमुख शत्रु–इल्ली है, जिसे चीटियां अपना शिकार बनाती है।

[122] "Natural Enemies (farmers' friends)", Network for Sustainable Agriculture. Retrieved from: http://www.aglearn.net/resources/vegIPM/naturalEnemies.pdf

[123] "Lady Beetles", retrieved from: http://www.biokids.umich.edu/critters/Coccinellidae/

[124] "All about Hover Flies", retrieved from: http://www.microscopy-uk.org.uk/index.html?http://www.microscopy-uk.org.uk/mag/ artmay07/cd-hoverflies.html

ट्रैप–फसलें

किसान मुख्य फसल से इल्लियों को दूर रखने के लिए कुछ कवर फसलें (ट्रैप–क्रॉप्स या संरक्षा फसलें भी कहा जाता है) उगा सकते हैं। यह फसल के खेत में साथी फसल उगा कर किया जा सकता है। मुख्य फसल के पास में संरक्षा फसल के रोपण से हानिकारक कीड़े संरक्षा फसल की ओर चले जाते हैं और मुख्य फसल को अछूता छोड़ देते हैं।

ट्रैप–फसलें एक बड़े खेत की परिधि में या छोटी जोत के खेत के अंदर बिखरे रूप में उगाई जा सकती हैं। इस रूप के संगी रोपण से मुख्य फसल इल्लियों के भारी विनाश से बच जाती है और यह कीटनाशकों के इस्तेमाल के बिना संभव है। किसानों को मुख्य फसल की अवधि के मुताबिक संरक्षा फसलों का चयन करना चाहिए और उन्हें उसी सीजन में उगाएं।

ट्रैप–फसलों के विभिन्न प्रकार

ट्रैप–फसलें कई प्रकार की होती हैं। एक सबसे आम विधि को ''पॉजीटिव होस्टिंग'' यानी सकारात्मक मेजबानी के रूप में जाना जाता है। इसमें महत्वपूर्ण परागण–जरूरतों वाली फसलें या पौधे शामिल हैं, जो कुछ तरह के फूलों से लाभ पाते हैं। फूल, मधुमक्खियों और अन्य परागकारी कीटों को आकर्षित करते हैं, जिनसे फसल को लाभ पहुंचता है।

आसान संदर्भ के लिए फसलों, इल्लियों और संरक्षा फसलों की एक सूची निम्नलिखित हैं :[125]

	फसल	इल्ली	ट्रैप–फसल
1.	कपास, मूंगफली	स्पोडोप्अेरा (Spodoptera)	अरंडी, सूरजमुखी
2.	कपास, मटर (चिक पी)	हेलीकोवेरपा (Helicoverpa)	गेंदा
3.	रहर	हेलीकोवेरपा	गेंदा
4.	मूंगफली	स्पोडोप्टेरा	अरंडी
5.	कपास	स्पोटेड बॉलवॉर्म (Spotted Bollworm)	भिंडी
6.	गोभी	डायमंड ब्लैक मोथ (Diamond Back Moth)	सरसों

[125] "Empowering Agriculture, Food Processing and Food Safety", retrieved from: http://www.efreshglobal.com/eFresh/Content/Free.aspx?u=npmComponents

ट्रैप–फसल उगाने के टिप्स :[126]

- खेत की एक योजना बनाएं– यह आपका मार्गदर्शन करेगी कि ट्रैप–फसलों को कहां बोना या रोपण करना है।
- इल्लियों के बारे में पता करें और उनकी पहचान करें।
- एक ऐसी ट्रैप–फसल का चयन करें, जो इल्ली के लिए मुख्य फसल की तुलना में अधिक आकर्षक है। अपने स्थानीय कृषि–विशेषज्ञ की सहायता लें।
- अपने पौधों पर नियमित रूप से निगरानी रखें।
- ट्रैप–फसल में पाई गई इल्लियों पर शीघ्र काबू पाएं।
- जब इल्लियों की संख्या अधिक हो जाए तो ट्रैप–फसलों की छंटाई करें या उसे हटाएं या जला दें, अन्यथा ये प्रजनन का अड्डा बन जाएंगी और इल्लियां खेत के बाकी भाग पर हमला कर देंगी।
- अपनी ट्रैप–फसल को निर्धारित समय से पहले की फसल के रूप में त्यागने के तैयार रहें और इल्लियों के तेज हमले होने पर उन्हें नष्ट करें।

पारिस्थितिकीय एवं टिकाऊ खेती की विभिन्न पद्धतियां से किसको लाभ मिलता सकता है?

औद्योगिकी तरीकों की खेती के विपरीत पारिस्थितिकीय एवं टिकाऊ खेती की विभिन्न पद्धतियां उन जीवन –निर्वाही किसानों के लिए है, जिनकी भूमि की जोत आम तौर पर 0.5 से 2 हेक्टेयर तक है। भारत में अधिकतर छोटे किसान के समुदाय हैं, जो जीवन निर्वाही खेती में कार्यरत हैं। भारत में करोड़ों जीवन निर्वाही किसान पारिस्थितिकीय एवं टिकाऊ खेती को अपना कर हमारे देश में मौजूद विश्व के एक सबसे बड़े किसान समूह की आजिविका, सुरिक्षत खाद्यान एवं आत्मनिर्भरता को सुनिश्चित कर सकते हैं।

रसायन–आधारित खेती से पारिस्थितिकीय खेती की ओर लौटना देश भर में टिकाऊ खेती प्रणाली को अपनाने का एक व्यापक किसान आंदोलन बन सकता है। भारत के छोटे किसान विश्व में दूसरी सबसे बड़ी आबादी के लिए मुख्य खाद्यान्न उत्पादक हैं और देश में किस तरीके से खाद्यान्न पैदा हो, उसमें उनकी भूमिका होनी चाहिए। यदि प्राकृतिक, जैविक, जीरो बजट खेती जैसे टिकाउ खेती अपनाने के लिए उन्हें प्रेरित करने के लगातार प्रयास किए जाएं तो खेती पर कॉरपोरेट शिकंजे को चुनौती दी जा सकती है।

आखिर में, सरकार देश भर में गांवों से शहरों की ओर हो रहे विशाल पलायन पर काबू पाने में पारिस्थितिकीय एवं टिकाउ खेती का उपयोग एक पुनर्वास रणनीति के रूप में कर सकती है। पारिस्थितिकीय खेती के तौर तरीके छोटे किसानों के लिए खेती को फायदेमंद गतिविधि और जीवन का एक टिकाऊ तरीका बनाने में उनके स्वयं के ज्ञान एवं क्षमताओं में गरिमा, गौरव, आत्मसम्मान एवं आत्मविश्वास प्रदान कर सकते हैं।

[126] "Trap Cropping", Online Information Service for Non-Chemical Pesticide Management. Retrieved from: http://www.oisat.org/ control_methods/cultural__practices/trap_cropping.html

पारिस्थितिकीय खेती के तौर तरीकों के बारे में अधिक जानकारी पाने के लिए संपर्क करें –

पारिस्थितिकीय खेती के तौर तरीके	वे संगठन/व्यक्ति, जिनसे तकनीकी सहायता के लिए संपर्क किया जा सकता है
जैव–ऊर्जा खेती **Biodynamic Farming**	Bio-Dynamic Association of India (BDAI) BDAI Secretariat, c/o EcoPro, Aurosarjan Complex, Auroshilpam, Auroville - 605 101, Tamil Nadu Phone: 09443137112, Email: lucasdl@auroville.org.in
	Biodynamic Association of India BDAI, c/o ICRA, 22, Michael Palya New Thippesandra, Bengaluru – 560075, Karnataka Phone: 080-25283370 / 25213104, Email: bdaind@gmail.com
जैविक खेती **Organic Farming**	Organic Farming Association of India (OFAI) G-8, St. Britto's Apartments, Feira Alta, Mapusa -403 507, Goa Phone: 0832 - 2255913/ 2256479/ 2263305, Email: myofai@gmail.com
	Organic Farmers Association A/p Bedkihal, Taluq Chikodi, District Belgaum, Karnataka. Pin- 591214 Phone: 08338 - 262056, Mobile: 0-9480448256 Email: deshisuresh@gmail.com
	All India Organic Farmers Society 6A, Namdev Complex, Sirsa Road, Hisar-125001, (Haryana) Phone/Fax: 01662 - 2241164, E-mail: info@aiofsindia.com
प्रकृति के साथ सामंजस्य बिठाते हुए खेती **Permaculture**	Sadhana Forest, Auroville – 605101, Tamil Nadu. Phone: 0413 - 2677682 or 2677683 or 2002655 Email: sadhanaforest@gmail.com
जीरो बजट की राष्ट्रीय खेती **Zero Budget National Farming**	Zero Budget Spiritual Farming Research Shri Subhash Palekar 19, "CHANDA SMRITEE", Jaya Colony, Near Telecom Colony, Sai Nagar Post, Amravati– 444 607 (MAHARASHTRA) Phone: 09423601004, 09673162240, 09850352745 Email: palekarsubhash@yahoo.com
वर्मीकम्पोस्ट एवं वर्मी वाश **Vermi Compost and Vermi Wash**	Dr. Sultan Ahmad Ismail Director, Ecoscience Research Foundation 99 Baaz Nagar, 3/621 – East Coast Road, Palavakkam, Chennai – 600041 Phone: 0-9384898358, Email: sultanismail@gmail.com
मिट्टी विज्ञान पर विशेषज्ञ **Expert on Soil Sciences**	Om P. Rupela, Former Scientist of ICRISAT, 120, Phase 1, Saket Township, Kapra, ECIL-Post, Hyderabad – 500062, Andhra Pradesh Phone: 09490621798, Email: oprupela@gmail.com

FOCUS ON THE GLOBAL SOUTH

फोकस ऑन द ग्लोबल साउथ

फोकस ऑन द ग्लोबल साउथ, एशिया (थाईलैंड, फिलीपीन्स एवं भारत) में स्थित एक नीति शोध संगठन है। फोकस भारत एवं विश्व के दक्षिण भाग (यानी विकासशील देशों) में वैश्वीकरण की राजनीतिक अर्थव्यवस्था और इस प्रक्रिया में अंतर्निहित प्रमुख संस्थाओं के बारे में शोध तथा विश्लेषण प्रदान कर सामाजिक आंदोलनों एवं समुदायों की सहायता करता है। फोकस के लक्ष्य दमनकारी आर्थिक एवं राजनीतिक संरचनाओं की समाप्ति, स्वतंत्र संरचनाओं तथा संस्थाओं का निर्माण, विसैन्यीकरण और शांति को बढ़ावा देना है।

ROSA LUXEMBURG STIFTUNG
SOUTH ASIA

रोज़ा लक्जमबर्ग स्टिफतुंग (आर.एल.एस.)

रोज़ा लक्जमबर्ग स्टिफटुंग (आर.एल.एस.) जर्मनी में स्थित एक फाउंडेशन है, जो दक्षिण एशिया की तरह ही विश्व के अन्य भागों में महत्वपूर्ण सामाजिक विश्लेषण और नागरिक शिक्षा के विषयों पर कार्य कर रहा है। यह एक संप्रभु, समाजवादी, धर्मनिरपेक्ष एवं लोकतांत्रिक सामाजिक व्यवस्था को बढ़ावा देता है। इसका उद्देश्य समाज एवं नीति निर्धारकों के सामने वैकल्पिक दृष्टिकोण प्रस्तुत करना है। यह शोध संगठनों, स्व–मुक्ति के लिए संघर्ष करने वाले समूहों और सामाजिक कार्यकर्ताओं को उन मॉडल्स के विकास में उनकी पहलों में मदद देता है, जिनमें अत्यधिक सामाजिक एवं आर्थिक न्याय देने की क्षमता है।